इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ

BSOC-104
भारत का समाजशास्त्र-II

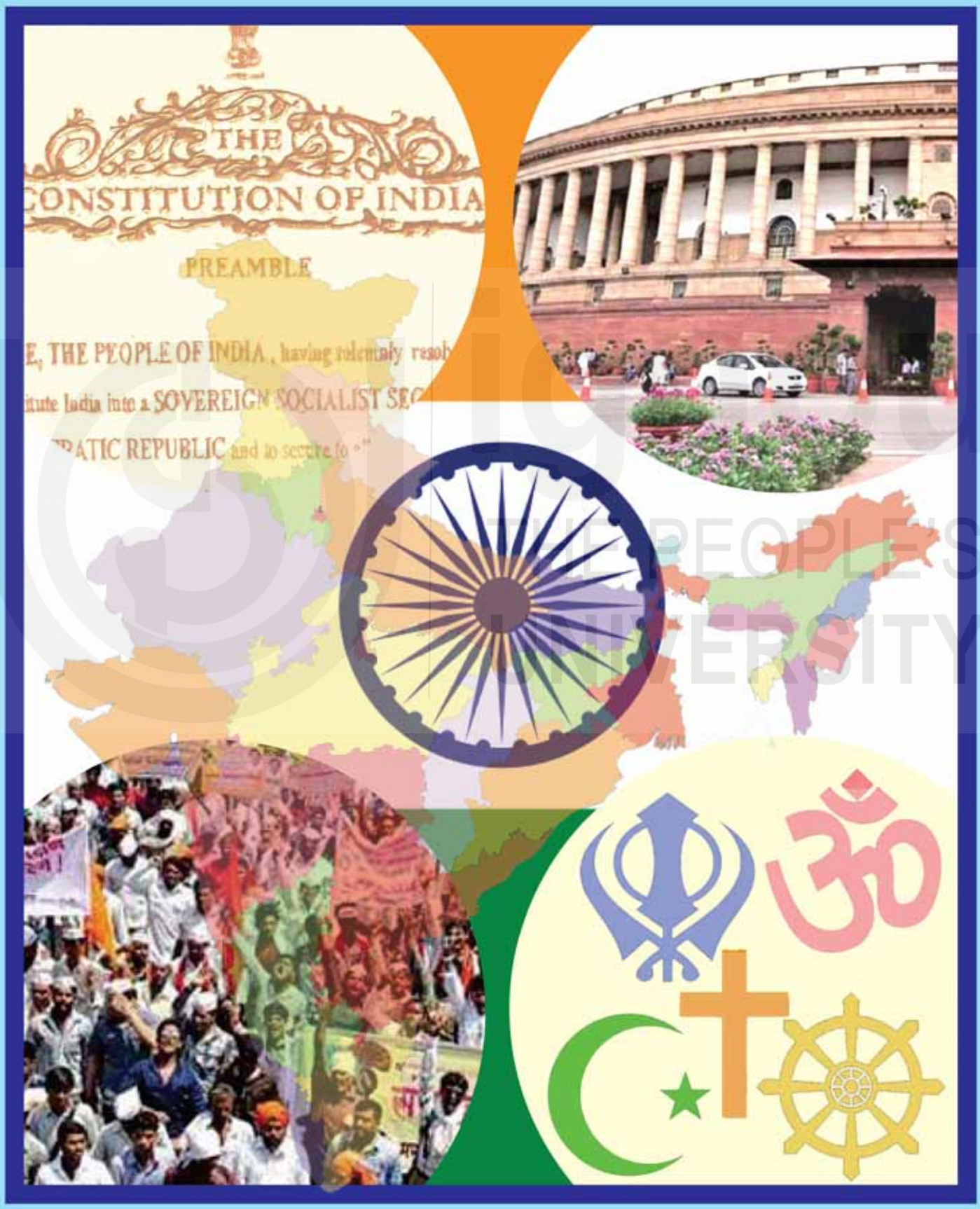

"शिक्षा मानव को बन्धनों से मुक्त करती है और आज के युग में तो यह लोकतंत्र की भावना का आधार भी है। जन्म तथा अन्य कारणों से उत्पन्न जाति एवं वर्तमान विषमताओं को दूर करते हुए मनुष्य को इन सबसे ऊपर उठाती है।"

– इन्दिरा गांधी

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

"Education is a liberating force, and in our age it is also a democratising force, cutting across the barriers of caste and class, smoothing out inequalities imposed by birth and other circumstances."

– Indira Gandhi

इग्नू
जन–जन की
विश्वविद्यालय

BSOC-104

भारत का समाजशास्त्र-II

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

विशेषज्ञ समिति

प्रो. अभिजीत दासगुप्ता
समाजशास्त्र विभाग
दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स
दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रो. निलिका महरोत्रा
सी. एस. एस. एस. जवाहरलाल नेहरू
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

डा. पुष्पेश कुमार
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

प्रो. मैत्री चौधरी
सी. एस. एस. एस. जवाहरलाल नेहरू
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रो. डी. गोपाल
निर्देशक
सामाजिक विज्ञान विभाग
इग्नू , नई दिल्ली

प्रो. देबल के. सिंहरॉय
समाजशास्त्र संकाय
सामाजिक विज्ञान विभाग
इग्नू , नई दिल्ली

प्रो. टी. कपूर
समाजशास्त्र संकाय
सामाजिक विज्ञान विभाग
इग्नू , नई दिल्ली

प्रो. एन. माथुर
समाजशास्त्र संकाय
सामाजिक विज्ञान विभाग
इग्नू , नई दिल्ली

डा. रबीन्द्र कुमार
समाजशास्त्र संकाय
सामाजिक विज्ञान विभाग
इग्नू , नई दिल्ली

डा. अर्चना सिंह
समाजशास्त्र संकाय
सामाजिक विज्ञान विभाग
इग्नू , नई दिल्ली

डा. बी. किरणमयी
समाजशास्त्र संकाय
सामाजिक विज्ञान विभाग
इग्नू, नई दिल्ली

डॉ. आर वाशुम
समाजशास्त्र संकाय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम तैयार करने वाली टीम

खंड और इकाई		इकाई लेखक	अनुवाद
खण्ड 1 भारत के विचार			
इकाई 1	बहुल छवियाँ	प्रो. देबल के. सिंहरॉय	ज्ञानेन्द्र सिंह
इकाई 2	गांधी और अम्बेडकर	डा. मुदासिर युसुफ	अनीता उपाध्याय
इकाई 3	भारत की वैचारिक छवि	प्रो. रबीन्द्र कुमार मोहंती	ज्ञानेन्द्र सिंह
इकाई 4	भारत की नृजातिविज्ञान छवि	प्रो. रबीन्द्र कुमार मोहंती	ज्ञानेन्द्र सिंह
इकाई 5	संवैधानिक आधार	डा. उज्मा अजहर	ज्ञानेन्द्र सिंह
खण्ड 2 प्रतिरोध, संग्रहण और परिवर्तन			
इकाई 6	गतिशीलता और परिवर्तन	ई. एस. ओ. - 4, इकाइ-29 से अंगीकृत	ज्ञानेन्द्र सिंह
इकाई 7	भारत में नृजातिया आंदोलन	डा. मानस नंदा	ज्ञानेन्द्र सिंह
इकाई 8	भारत में कृषक आंदोलन	सोमा रॉय, शोधार्थी	ज्ञानेन्द्र सिंह
इकाई 9	भारत में दलित आंदोलन	डा. मानस नंदा	अनीता उपाध्याय
इकाई 10	भारत में महिला आंदोलन	ई. ए. ओ. 12, इकाई - 30 से अंगीकृत	ज्ञानेन्द्र सिंह
इकाई 11	भारत में श्रमिक वर्ग आंदोलन	प्रो. देबल के. सिंहरॉय	ज्ञानेन्द्र सिंह
खण्ड 3 राज्य और समाज : विचारधाराओं का संघर्ष			
इकाई 12	साम्प्रदायिकता	ई. एस. ओ. 15, इकाई - 32 से अंगीकृत	अनीता उपाध्याय
इकाई 13	धर्मनिरपेक्षता	डा. एस. एन. बाग	ज्ञानेन्द्र सिंह
इकाई 14	राष्ट्रवाद	प्रो. देबल के. सिंहरॉय	ज्ञानेन्द्र सिंह

पाठ्यक्रम संयोजक : प्रो. देबल के. सिंहरॉय, समाजशास्त्र संकाय, सामाजिक विज्ञान विभाग, इग्नू , दिल्ली

प्रधान संपादकः प्रो. (सेवानिवृत्त) मोहिनी अंजुम, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली

भाषा संपादक : डा. ए. मलाथी, अंग्रेजी संकाय, मानविकी विभाग, इग्नू , नई दिल्ली

शैक्षणिक परामर्शदाता : डा. विनोद कुमार यादव, समाजशास्त्र संकाय, समाजिक विज्ञान विभाग, इग्नू , नई दिल्ली

डा. वन्दना शर्मा, समाजशास्त्र संकाय, सामाजिक विज्ञान विभाग , इग्नू , नई दिल्ली

सामग्री निर्माण

श्री तिलक राज	श्री यशपाल कुकरेजा	श्री सुरेश कुमार
सहायक कुलसचिव (प्रकाशन)	अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)	एसओएसएस
एमपीडीडी, इग्नू, नई दिल्ली	एमपीडीडी, इग्नू, नई दिल्ली	इग्नू, नई दिल्ली

अक्टूबर, 2020

ISBN: 978-93-90496-30-3

© इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2020

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कृति का कोई भी अंश, मिमियोग्राफ या किसी भी अन्य रूप में, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी अन्य व्यक्ति द्वारा पुनरुत्पादित नहीं किया जा सकता है।

इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव, एमपीडीडी, इग्नू द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंग : टेसा मीडिया एण्ड कम्प्यूटर, C-206,A.F.Enclave-II, नई दिल्ली

मुद्रकः नोवा पब्लिकेशन एवं प्रिंटर्स (प्राइवेट) लिमिटेड, फरीदाबाद–121004, दूरभाष 0129–4317645

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

विषय -सूची

		पृष्ठ सं.
खण्ड 1	**भारत के विचार**	9
इकाई 1	बहुल छवियाँ	11
इकाई 2	गाँधी और अम्बेडकर	26
इकाई 3	भारत की वैचारिक छवि	43
इकाई 4	भारत की नृजातिविज्ञान छवि	59
इकाई 5	संवैधानिक आधार	74
खण्ड 2	**प्रतिरोध, संग्रहण और परिवर्तन**	**89**
इकाई 6	गतिशीलता और परिवर्तन	91
इकाई 7	भारत में नृजातविज्ञान आंदोलन	108
इकाई 8	भारत में कृषक आंदोलन	123
इकाई 9	भारत में दलित आंदोलन	140
इकाई 10	भारत में महिला आंदोलन	157
इकाई 11	भारत में श्रमिक वर्ग आंदोलन	177
खण्ड 3	**राज्य और समाज : विचारधाराओं का संघर्ष**	**197**
इकाई 12	सांम्प्रदायिकता	199
इकाई 13	धर्मनिरपेक्षता	213
इकाई 14	राष्ट्रवाद	226

पाठयक्रम परिचय

इस पाठ्यक्रम का निर्माण छात्रों को भारत के लोगों की संस्कृति जाति की विविधता, जनजाति, धर्म, क्षेत्र और नृजातियता के इतिहास, विशालता व व्यापकता से परिचय करवाने के लिए किया गया है। इसका तात्पर्य एक यात्रा से है जो भारत के लोगों की महान सभ्यता की समृद्ध विरासत का खुलासा करती है और जिसमें एक विस्तृत चित्रफलक (Canvas) शामिल है।

इकाई 1 से शुरुआत करते है जो एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत की छवियों का परिचय देती करती है, पाठ्यक्रम छात्रों को बहुल छवियों से परिचित कराता है जो उस समय की अवधि में, खास तौर पर ब्रिटिश काल के दौरान, यात्रियों, इतिहासकारों, विद्वानों और प्रशासकों द्वारा चित्रित की गयी थी। इनमें से कुछ छवियाँ काफी विकृत और हानिकारक थी जैसा कि कुछ लोगों ने भारत के लोगों को बर्बर के रूप में चित्रित किया था। हालांकि , भारत में ब्रिटिश काल के दौरान भारतीयों द्वारा शिक्षा तक पहुँच और भारतीय समाज ने सांस्कृतिक व सामाजिक विविधताओं की अच्छी समझ के साथ, अंग्रेजों ने भी 'द वंडर दैट वॉस इंडिया' की समझ के लिए अधिक यथार्थवादी दृष्टिकोण हासिल कर लिया था (ए. एल. वाशम)।

कोई भी भारतीय समाज को, भूत और वर्तमान में भारत में ब्रिटिश राज और उसका अनुसरण करने वाले स्वतंत्रता संग्राम के प्रभाव की अच्छी समझ के बिना नहीं समझ सकता है। इस प्रकार, लगभग सभी इकाईयों में बड़े भाग है जो ब्रिटिश शासन के लिए भारत के लोगों की प्रतिक्रियाएँ स्वतंत्रता संग्राम को सम्मिलित करती है और महात्मा गाँधी, पंडित नेहरू, मौलाना आजाद और दूसरे राजनीतिक नेताओं की भूमिका को उजागर करती है जो स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व करने वाले थे।

स्वतंत्रता संग्राम अंग्रेजों को भारत से उखाड फेकने और संप्रभुता (स्वराज) पाने के लिए प्रतिबद्ध था, परन्तु इस संग्राम के साथ साथ, भारतीय समाज के भीतर भी सती, बाल विवाह, जातिगत भेदभाव और अस्पष्यता आदि जैसी गहरी जड़ों वाली सामाजिक बुराइयों से छुटकारा पाने के लिए संघर्ष उत्पन्न हुआ था। सामाजिक सुधार आंदोलन ने भी अब तक अपनी स्थिति मज़बूत कर ली थी और बंगाल में राजा राममोहन रॉय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर से लेकर पंजाब में दयानन्द सरस्वती, पश्चिम में खोखले और खाडे से लेकर दक्षिण में ऐनी बेसंट जैसे सभी सामाजिक सुधारक समान रूप से भारतीय समाज के दलित वर्गों खास तौर पर महिलाओं और अस्पष्यों के उत्थान के लिए प्रतिबद्ध थे।

हमें आजादी 1947 में प्राप्त हुई परन्तु दलित आंदोलनों के रूप में भारतीय समाज के अंदर सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष आज भी जारी है। भारतीय समाज के ये सभी भाग अपनी न्यायोचित स्थिति पाने के लिए अभी भी संघर्षरत् है। संवैधानिक उपायों के बावजूद, रोजमर्रा की जिंदगी में भेदभाव जारी है। ऊपर उल्लेखित सभी आंदोलनों पर एक विस्तृत व्याख्या के लिए पूरी इकाईयाँ समर्पित है। इन इकाईयों में महात्मा गाँधी और डा. बी. आर. अम्बेडकर की भूमिका को रेखांकित किया गया है।

स्वतंत्रता-पश्चात् काल ने भारतीय समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तनों और चुनौतियों की एक विस्तृत श्रृंखला देखी है। भारत का विभाजन और पाकिस्तान का निर्माण भारत में धर्मनिरपेक्षता के ढाँचे के अंदर बहुसंख्यक-अल्पसंख्यक संबंधों के लिए एक गंभीर खतरा रहा है और अभी भी बना हुआ है। यह विषय कई इकाईयों, खास तौर पर साम्प्रदायिकता, धर्मनिरपेक्षता और राष्ट्रवाद पर इकाईयों के माध्यम से चलता है।

शहरी वृद्धि (विकास), औद्योगीकरण, शिक्षा, विकास, उदारीकरण, वैश्वीकरण सभी भारतीय समाज में भीषण रूपांतरण लाया है। दोनों ग्रामीण और शहरी ने जाति, परिवार और गाँव की बुनियादी संस्थानों को प्रभावित किया है। महिलाओं और दलितों की अवस्थाओं ने भी बड़े रूपांतरण को देखा है।

महिला आंदोलनों, कृषक आंदोलनों और दलित आंदोलन पर इकाईयाँ में विवादित मुद्दों की एक विस्तृत श्रृंखला और उनके लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए लागू योजनाओं को सम्मिलित किया गया है। यहाँ फिर से, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य उस सारे का विहंगम (विशाल), दृश्य देता है जिससे ये आंदोलन, इनकी सफलता और असफलता की कहानियाँ गुजर चुकी है।

धर्मनिरपेक्षता और राष्ट्रवाद से संबंधित इकाईयाँ ऐसी विशाल जनसंख्या के साथ, ऐसी अत्यधिक विविधताओं, दुनिया में सबसे बडे लोकतंत्र के अलावा, दुनिया की एक सबसे बडी अर्थव्यवस्था में तेजी से विकसित और रूपांतरित हो रहे एक समाज में इन उद्देश्यों को प्राप्त करने में हो रही कठिनाओं को प्रदर्शित करती हैं। भारत की बहुत सी उद्भूद विशेषताएँ है जैसे जातिवाद, क्षेत्रवाद, धर्मनिरपेक्षता, बहु-संस्कृतिवाद और प्रत्येक 'वाद' नए अर्थों को भी प्राप्त कर रहे है तथा नए कार्यक्षेत्रों को भी सम्मिलित कर रहे है। धर्मनिरपेक्षता और राष्ट्रवाद को प्राप्त करने में एक प्रमुख चुनौती खडी करती है। भारतीय लोकतंत्र में, जाति, धर्म, क्षेत्र और अन्य सभी महत्वपूर्ण विभाजन वोट बैंक के रूप में एक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। राजनीतिक दल हमेशा चुनाव से एकदम पहले वोट प्राप्त करने के लिए खास तौर पर सांप्रदायिक विभाजन के आधार पर जाति, धर्म और क्षेत्र भावनाओं का प्रयोग करते है, ठीक यही वजह है कि ठीक चुनाव से पहले साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठते है।

आंतरिक और बाहय, कुछ प्रमुख ताकतें जो लक्ष्यों और समानता, स्वतंत्रता, धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रवाद आदि आदर्शों को प्राप्त करने में मदद करती है हमारे संविधान में प्रतिष्ठापित है उन पर संप्रदायवाद, धर्मनिरपेक्षता और राष्ट्रवाद की इकाईयों में विस्तार से चर्चा की गयी है।

इस पाठ्यक्रम को पढ़ने के बाद, विद्यार्थियों से आशा की जाती है कि वे भारत की विभिन्न छवियों, इसके लोगों, इसकी विविधताओं, एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में इन विविधताओं में अंतर्निहित एकीकृत ताकतों और करकों तथा वर्तमान समाज में इसकी चुनौतियों के बारे में सीख जायेंगे।

यह पाठ्यक्रम तीन अंर्तसंबंधित खंडों में प्रस्तुत किया गया है। खंड 1 भारत के विचारों से संबंधित है जो भारत की सांस्कृतिक बहुलता की नींव में प्रतिबिंबित होते हैं। भारत की सांस्कृतिक और राजनैतिक कल्पना के साथ साथ भारतीय संविधान के माध्यम से प्रतिबिंबित भारत की बुनियादी धर्मनिरपेक्ष, समाजवादी और लोकतांत्रिक छवि को भी दर्शाती है। यह खंड अंबेडकर और गांधी के द्वारा प्रस्तुत भारत की छवि और भारत के सैद्धांतिक और नृवंशविज्ञानी छवि का विश्लेषण करता है। खंड 2 प्रतिरोध, संग्रहण और परिवर्तन के विषय पर है। यह भारत में संग्रहण और परिवर्तन की गतिकी (Dynamics), प्रजातीय, कृषक दलित महिला और कामगारों के आंदोलन के विषय में है। में है। खंड 3 में सांप्रदायिकता, धर्मनिरपेक्षता और राष्ट्रवादिता के बदलते संदर्भों में राज्य और समाज की चर्चा की गई है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खण्ड 1
भारत के विचार

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 1 भारत : बहुल छवियाँ*

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 भारतीय समाज में बहुलता और सामंजस्य की संस्कृति

- 1.2.1 भारत में बहुलवाद और एकता के पहलू
- 1.2.2 हिन्दू आध्यात्मवाद में सनातन दर्शन परम्परा
- 1.2.3 भारत का ऐतिहासिक प्रक्षेप पथ

1.3 भारत की औपनिवेशिक कल्पना

- 1.3.1 मैकॉले का विवरण पत्र
- 1.3.2 जेम्स मिल द्वारा भारतीय सभ्यता का वर्णन
- 1.3.3 हीगल, मार्क्स और एंजेल द्वारा भारत की कल्पना
- 1.3.4 मैक्स वेबर
- 1.3.5 मार्क ट्वेन

1.4 सांस्कृतिक मुठभेड़ : पूर्व और पश्चिम

1.5 भारत की आत्मसातावादी और उदारवादी कल्पना

- 1.5.1 रवीन्द्रनाथ टैगोर
- 1.5.2 गाँधी
- 1.5.3 नेहरू
- 1.5.4 अम्बेडकर
- 1.5.5 सांस्कृतिक राष्ट्रवादी परिकल्पना

1.6 भारत की राष्ट्रीयता और विशिष्टता

1.7 सारांश

1.8 संदर्भ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपके लिए संभव होगा :-

- भारतीय समाज की बहुलता के सनातन पहलुओं और भारतीय समाज की एकता की विरासत व विविधता का वर्णन करना
- हिन्दू आध्यात्मवाद में सनातन दर्शन परम्परा को स्पष्ट करना
- भारतीय समाज के औपनिवेशिक वर्णन की समालोचना विकसित करना
- हीगल, मार्क्स, वेबर और ट्वेन द्वारा की गई भारत की परिकल्पना को रेखांकित करना
- टैगोर, गाँधी , नेहरू और अन्यों द्वारा प्रस्तुत भारत के परिप्रेक्ष्य को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत करना, और
- भारतीय समाज की बहुल नींव (आधार), जैसा कि भारतीय संविधान में निहित है, की जांच करना।

* यह इकाई प्रो. देबल सिंहरॉय के द्वारा लिखी गई है।

1.1 प्रस्तावना

भारत एक समजज के रुप में बहुलवाद और सामंजस्य की परम्परा तथा सांस्कृतिक उदारवाद पर आधारित है। ऐसी परम्पराओं की इसकी लम्बी ऐतिहासिक विरासत है। हालाँकि भारतीय समाज के सांस्कृतिक लोकचारों की व्यवस्था और कल्पना समान रुप से नहीं की गयी। भारतीय नेताओं, दार्शनिको, कवियों तथा लेखकों ने भारतीय समाज की एतिहासिक तथ्यों पर आधारित आवश्यक बहुल और सामांजस्यात्मक नींवों (आधारों) को रेखांकित किया है जबकि औपनिवेशिक शासकों और बहुत से पश्चिमी देशों के लोगों ने भारतीय समाज का चित्रण नकारात्मक रुप से किया है। यह इकाई इस तरह के चित्रणों की झलक प्रदान करेगी और भारतीय समाज पर अधिक चर्चा के लिए पृष्ठभूमि को प्रशस्त करेगी। इस इकाई की शुरुआत भारतीय समाज की सामंजस्य की संस्कृति के महत्वपूर्ण पहलुओं और बहुलवाद तथा विविधता के साथ हुई है। यह इकाई भारतीय समाज की एतिहासिक झलक प्रदान करती है और मैकॉले के विवरण-पत्र, जेम्स मिल की भारतीय सभ्यता की व्याख्या तथा हीगल, एंजेल्स, मैक्स वेबर और मार्क ट्वीन की भारतीय समाज की समझ के आधार पर भारतीय समाज की औपनिवेशिक कल्पना की संक्षिप्त रुपरेखा प्रस्तुत करती है। इसके बाद एडवर्ड सेड, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गाँधी और जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत भारत के चित्रण और व्याख्या दी गई है। इस इकाई में भारत की राष्ट्रीयता और विशिष्टता की बहुल नींव (आधार) तथा भारतीय समाज की संवैधानिक नींव (आधार) का भी वर्णन किया गया है। आइए, शुरुआत भारतीय समाज की बहुल नीवं (आधार) पर वर्णन के साथ करते है।

1.2 भारतीय समाज में बहुलता और सामंजस्य की संस्कृति

जैसे ही हमने भारत का एक चित्रण विकसित करने की कोशिश करते है वैसे ही अक्सर हमारा सामना भारत के विविध आदर्शो, चित्रणों और सत्यताओं (वास्तविकताओं) से होता है। भारत के सामाजिक-राजनीतिक और भौगोलिक आयामों का वर्णन करने के लिए हमारे पास लम्बी सभ्यतागत विरासत, समृद्ध धार्मिक और दार्शनिक परम्पराएँ, गहन सांस्कृतिक ढांचा और आर्थिक आधार है। महत्वपूर्ण ढ़ंग से ये सभी आदर्श, चित्रण और वास्तविकनाएँ हमेशा बहुल या अनेक रहती है।

1.2.1 भारत में बहुलवाद और एकता के पहलू

समाज लोगों से बनता है। भारत में हम विशिष्ट भौतिक विशेषताओं या लक्षणों के लोगों को पाते है। हर्बर्ट रिजले ने भारत के लोगों को सात प्रजातीय प्रकारों में बाँटा था, जो निम्नलिखित है (i) टर्की-ईरानियन, (ii) इण्डो-आर्यन, (iii) सिथो-द्रविडियन, (iv) आर्य-द्रविडियन, (v) मंगोल-द्रविडियन, (vi) मंगोलॉयड, और (vii) द्रविडियन।

1971 की जनगणना के अनुसार भारत में 1652 भाषाएँ है जो मातृभाषा के रुप में बोली जाती है। प्रसिद्ध भाषाविद ग्रिएर्सन ने 179 भाषाओं तथा 544 उपभाषाओं को बताया है। भारत में 22 अधिकारिक भाषाएँ, 13 विभिन्न लिपियाँ तथा 270 से अधिक उप-भाषाएँ है। भारत विभिन्न धर्मो की भूमि है। भारत हिन्दू धर्म (80.5%) जैन धर्म (.4%), बौद्ध धर्म (.8%), सिख धर्म (1.9%), और जनजातीय धर्मों की किस्मों का जन्म स्थान है। भारत में प्रत्येक प्रमुख धर्म जैसे ईसाई धर्म (2.3%), इस्लाम (13.5%), यहूदी धर्म, पारसी धर्म, और बहाई धर्म आदि के काफी अनुयायी है। इन धार्मिक समूहों में अधिकांश के बीच जाति या जाति जैसी विविधताएँ भी है।

फिर भी, इन विविधताओं के बावजूद भारत में एकता के मजबूत बंधन है। ये मजबूत बंधन भौगोलिक एकता में प्रदर्शित होते है। जैसे उत्तरी छोर पर हिमालय और दूसरे छोरों पर समुद्र स्थित है। राजनीतिक रुप से भारत एक सम्प्रभुत्व राज्य है। एक संविधान और एक संसद इसके प्रत्येक भाग को शासित करती है। हम एक जैसी राजनीतिक संस्कृति को सांझा करते है जो लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद द्वारा चिहिनत है। भारत की भौगोलिक-राजनीतिक एकता का आदर्श 'भारतवर्ष' की अवधारणा (भारत के लिए प्राचीन स्वदेशी उत्कृष्ट नाम) में भी प्रदर्शित होता है। भारत की एकता का दूसरा महत्वपूर्ण स्रोत तीर्थ यात्रा की संस्थाओं द्वारा चिन्हित है जो भारत के विभिन्न भागों में मंदिरों और पवित्र स्थानों के तंत्र के रुप में प्रदर्शित होता है।

1.2.2 हिन्दू आध्यात्मवाद में सनातन दर्शन परम्परा

भारतीय संस्कृति की दर्शन परम्परा सामंजस्य और सहिष्णुता को स्थान प्रदान करती है जो समाज को एकता के सूत्र में बांधता है। हालाँकि हिन्दू धर्म भारत का बहुसंख्यक धर्म है परन्तु यह एक सदृश (एक-सा) धर्म नहीं है जिसका एक भागवान, एक ग्रंथ और एक मंदिर हो। सामंजस्य की परम्परा सनातन है और भारत में हिन्दू धर्म जीने का तरीका है। दार्शनिक रुप से इसने उस परम्परा को कायम रखा है जो सम्पूर्ण विश्व की एक परिवार की तरह कल्पना करती है : वसुधैव कुटुम्बकम ("वसुधा"-विश्व (धरती); "ऐव"- है; और "कुटुम्बकम"-परिवार)/ यह एक संस्कृत उक्ति है। जिसका तात्पर्य है कि सम्पूर्ण विश्व एक परिवार है। यह अवधारणा वैदिक शास्त्र महा उपनिषद (अध्याय 6, श्लोक 72) में मिलती है। यह आगे कहता है कि अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम, उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् जिसका अर्थ है : ऐसी गणना छोटे चित्त वाले लोग करते है कि यह अपना बन्धु नहीं है। उदार ह्दय वाले लोगों की तो सम्पूर्ण धरती (विश्व) ही परविार है। यह हिन्दू दर्शन का अभिन्न अंग माना जाता है।

हिन्दूत्व सार्वभौतिकता की भावना पर स्थापित है। विवेकानन्द ने 1893 में अपने प्रसिद्ध शिकागों भाषण में उपयुक्त रुप से बताया है कि एक धर्म के रुप में हिन्दू धर्म ने विश्व को सहिष्णुता और सार्वभौमिक स्वीकृति सिखायी है जो केवल सार्वभौमिक सहिणुता में ही विश्वास नहीं करता बल्कि सभी धर्मों को सत्य के रूप में स्वीकार करता है। उन्होंने आगे कहा कि भारत ने एक राष्ट्र के रुप में दुनिया के सभी धर्मों और सभी राष्ट्रों के सताये हुए और शरणार्थियों को शरण दी है। उन्होंने वैदिक प्रार्थना से कुछ पक्तियों को कहा जो भारतीय समाज और हिन्दू धर्म के सार को उजागर करती है :

'जैसे विभिन्न धाराएँ विभिन्न स्थानों से उत्पन्न होकर सभी अपने जल के साथ समुद्र में मिलती है, वैसे ही, हे प्रभु, विभिन्न रास्ते जो विभिन्न प्रवृत्तियों के कारण लोग अपनाते है, जो दिखने में अलग-अलग प्रतीत होते है, जो चाहे टेड़े-मेड़े या सीधे है सभी तुम तक पहुँचते है।

1.2.3 भारत का ऐतिहासिक प्रक्षेप पथ

हिन्दू धर्म पारम्परिक रुप से एक अखण्ड धर्म की बजाय जीवन जीने के एक तरीके के रुप में परिभाषित किया जाता हैं। जीवन के तरीके के रुप में यह सामाजिक प्रथाओं की श्रेणियों और इसके सभ्यतागत प्रक्षेप पथ से जुड़ा रहता है। भारत के पास 5,000 साल पुरानी सिन्धु घाटी सभ्यता की विरासत है, जिसको हडप्पा सभ्यता (3300-1500 ईसा पूर्व) के नाम से जाना जाता है। ऐतिहासिक प्रक्षेप पथ में इसको पता लगाने पर इसकी जड़ें वैदिक

समाज (1500-200 ईसा पूर्व) में मिलती हैं तथा इसमें जैन धर्म व बौद्ध धर्म के उद्‌भव, मध्य कालीन राजवंशी शासन, पारसी व ग्रीक आक्रमण (200 इसापूर्व से 1200 इस्वी) और निरंतर मुस्लिम आक्रमण और मुस्लिम सल्तनत के निर्माण, भक्ति आन्दोलनों के प्रसार, सिख धर्म के उद्‌भव, दक्षिण में विजयनगर साम्राज्य का शक्तिशाली होना (1200-1526 ईस्वी), मुगलों के निर्माण और विस्तार के अलावा मराठाओं, सिखों और दूसरे साम्राज्यों का निर्माण और विस्तार तथा ब्रिटिश औपनिवेशिक शक्ति का आगमन और मुगल शक्ति का अंत (1526-1857 ईस्वी), ब्रिटिश औपनिवेशिक शक्ति का एकीकरण, भारत का स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष (1857-1947) को देखा है। इन सभी ऐतिहासिक परिवर्तनों, चुनौतियों और आक्रमणों जो बाहरी शक्तियों के साथ हुए, स्थितियों में भारत ने बहुलवाद और सामंजस्य की संस्कृति को बनाये रखा है।

हालाँकि भारतीय समाज का बदलते ऐतिहासिक प्रक्षेप पथ तथा खास तौर पर बाहरी शक्तियों के प्रति प्रतिक्रिया को विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न रुप से दर्शाया है। इस इकाई के अगले भाग में हम मैकॉले, हीगल, मार्क्स और एंजेल, वेबर, मार्क ट्वेन और अन्य द्वारा किये गये भारत के वर्णन और कल्पना की झलक प्रदान करेंगे।

बोध प्रश्न 1

1) भारत में एकता और विविधता के प्रमुख लक्षणों को पहचानिए।

.....

.....

.....

.....

.....

1.3 भारत की औपनिवेशिक कल्पना

औपनिवेशिक शक्ति भारतीय समाज, लोग, संस्कृति, भाषा और शिक्षा पर नकारात्मक विचार रखती थी। यह परिप्रेक्ष्य व्यापक रुप से, 2 फरवरी, 1835 के शिक्षा पर मैकॉले के विवरण पत्र, जेम्स मिल्स द्वारा भारत का वर्णन इत्यादि में प्रदर्शित होता है।

1.3.1 मैकॉले का विवरण पत्र

दस्तावेज़ में लिखा है : "..... कि भारत के इस भाग में मूल निवासियों के मध्य सामान्य रुप से बोली जाने वाली बोली (भाषा) ना तो साहित्यिक और ना ही वैज्ञानिक ज्ञान रखती है और इसके अलावा तुच्छ और असभ्य है ..... मैने अरबी और संस्कृत के बहुत ही प्रसिद्ध कार्यो के अनुवादों को पढ़ा है।

मैने उनमें से एक को भी नही पाया जो इस बात को अस्वीकार कर सके कि श्रेष्ठ यूरोपीय पुस्तकालय की मात्र एक अलमारी भारतीय और अरबी भाषा के संपूर्ण साहित्य से अधिक मूल्यवान है। पश्चिमी साहित्य की स्वभाविक श्रेष्ठता को वास्तव में पूरी तरह से स्वीकार किया और मैं निश्चित रुप से कभी भी किसी प्राच्यविद् से नही मिला जिसने निश्चयपूर्वक यह कहने का साहस किया हो कि अरबी और संस्कृत काव्य की महान यूरोपीय राष्ट्रों के काव्य से तुलना की जा सकती है ..... मै विश्वास करता हूं, यह कहना

अतिश्योक्ति नहीं होगा कि सारी ऐतिहासिक जानकारी जो संस्कृत भाषा में लिखी सभी पुस्तकों से एकत्रित की गयी है वह इंग्लैंण्ड के प्रारम्भिक स्कूलों में प्रयोग किये जाने वाले मामूली सार से भी कम मूल्यवान है। भौतिक या नैतिक दर्शन की प्रत्येक शाखा में, दोनों राष्ट्रों की तुलनात्मक (सापेक्ष) स्थिति लगभग समान है ....."

इसलिए मैकॉले का सुझाव था कि "हमें उन्हें यह शिक्षा देनी चाहिए सबसे अच्छा जानने योग्य क्या है, कि संस्कृत या अरबी की तुलना में अंग्रेजी जानना बेहतर है, वर्तमान में हम अपनी तरफ से सबसे अच्छा यह कर सकते है कि एक ऐसे वर्ग का निर्माण करे जो हमारे और उन लाखों लोगों जिन्हें हम शासित करते है के बीच अनुवादक हो सकते है-उन लोगों का एक वर्ग जो खून और रंग-रुप में भारतीय हो परन्तु अभिरूचियों में, विचारों में, नैतिकता में और बुद्धि में अंग्रेज हो/उस वर्ग को हम देश की मातृभाषा/स्वदेशी बोलियों को परिष्कृत करने के लिए, पश्चिमी शब्दावली से उधार लिए गए विज्ञान के शब्दों के साथ उन बोलियों को समृद्ध करने के लिए, और उनकों जनसंख्या के एक बड़े भाग को डिग्री के माध्यम से ज्ञान का हस्तांतरण करने के लिए प्रयोग कर सकते है।"

1.3.2 जेम्स मिल द्वारा भारतीय सभ्यता का वर्णन

बहुत से औपनिवेशिक इतिहासकारों ने भारतीय सभ्यता को नकारात्मक विविधताओं के साथ वर्णित किया है। उदाहरण के लिए, एक अंग्रेजी इतिहासकार, जेम्स मिल, ने हिन्दूओं की तुलना "अमेरिका के असभ्यों" से की हैं; भारतीय वास्तु और शिल्पकला कृतियों को "जगलियों की कला" कहा गया ; भारत को, इन लेखों में, एक "अर्द्ध-सभ्य राष्ट्र" कहा गया। औपनिवेशिक विद्वानों ने भारतीय जीवन के तरीके को घिनौना भी माना है और विश्वास करते है कि इसको रूपांतरण या कायापलट की आवश्यकता है और एक पश्चिमी अभिविन्यास इसको दिया जाये यह अनुभूति ही ब्रिटिशों द्वारा शुरू की गयी "सभ्य मिशन" के पीछे भी थीं। हिन्दुओं द्वारा प्राप्त किये गये सभ्यता के स्तर का उन औपनिवेशिक विद्वानों द्वारा क्रम अनुमान ब्रिटिश शासन की निरन्तरता के लिए समर्थन प्रदान करता था, और इस विचार का समर्थन करता था कि भारत पर शासन सभ्य यूरोपीय मानकों के अनुसार होना चाहिए ना कि भारतीय मूल काके. मिल. ने माना कि 'भारत में अंग्रेजी सरकार अपनी सभी बुराईयों के बावजूद हिन्दूस्तान की जनसंख्या (जनता) के लिए अकथनीय परिमाण का आशीर्वाद है।'

1.3.3 हीगल, मार्क्स और एंजेल द्वारा भारत की कल्पना

हीगल, मार्क्स और एंजेल की कल्पना में भारत एक स्थिर पहचान प्रतीत हुआ। उन्होंने भारत को विशिष्ट नमूने के रुप में चित्रित किया। हीगल के लिए, इतिहास का उद्भव पूर्व में था। परन्तू चीन और भारत हजारों सालों तक अपरिवर्तित रहे। स्वयं हीगल के शब्दों में : "चीन की तरह भारत एक प्राचीन परिघटना होने के साथ-साथ आधुनिक परिघटना भी है ; जो अपरिवर्तित और स्थिर बना हुआ है। "

मार्क्स ने यूरोप के सामाजिक इतिहास के भौगोकवादी सिद्धांतों का वर्णन करने के लिए भारतीय सामग्री (तथ्यों) का प्रयोग किया। उन्होंने मानव समाज के बहुत शुरूआती चरण दिखाने की कोशिश की जिसमें सभी आदमी मालिक और मजदूर दोनों थे। मार्क्स ने माना कि भारत में इस तरह का समाज वास्तव में बहुत प्राचीन समय से अंग्रेजों की विजय तक विद्यमान रहा। 'कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो' (Communist Manifesto) में केन्द्रिय विचार उन समाजों पर था जो वर्ग भेदभाव पर आधारित थे। इसमें भारत, चीन या दूसरे एशियाई देशों

के समाज की प्रकृति का कोई संदर्भ नहीं था। अपने "साम्यवाद के सिद्धांत" में, एंजेल ने 1847 में भारत और चीन को ऐसे देशों के रुप में उल्लेखित किया जिन्होंने हजारों वर्षों तक की प्रगति नहीं की। वहीं पर उसने अर्द्ध-जंगली (अर्द्ध-सभ्य) देशों का उल्लेख किया जो पहले कमोबेश ऐतिहासिक विकास की रेखा के बाहर थे। ये सभी किसी सम्यता के अधीनस्थ रहने के लिए अभिशप्त है, विशेष रूप से ब्रिटिश उद्योग और व्यापार के अधीन होने के लिए (थार्नर 1980)।

मार्क्स के अनुसार भारत की ज्यादा विशिष्ट गुण इसकी सदियों पुरानी गाँव की व्यवस्था है। जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग देश के भू-भाग के ऊपर छोटे समूहों में फैला हुआ है। कृषि योग्य और बंजर भूमि के अपने क्षेत्र में स्थित, प्रत्येक गाँव एक स्वतंत्र संस्था और एक पृथक जीवन के साथ अपने को एक छोटा संसाार बनाता है। "कृषि और विनिर्माण क्षेत्र के घरेलू संघ" गाँव की प्रमुख विशेषता है। "हाथ से बुनाई, हाथ से कताई और हाथ से करने वाली कृषि के अनूठे संयोजन" ने गाँवों को आत्म-निर्भरता प्रदान की (मार्क्स 1853)।

मार्क्स ने भारतीय गाँवों को "रूढ़िवादी आदिम स्वरूप" रखने वालों की तरह वर्णित किया है क्योंकि भारतीय गाँवों में अपनी प्राचीन संरचना को संरक्षित रखा है। दूसरा उपनाम जो उसने उनकों दिया है वह है "परिवार समुदाय, अर्थात वे एक-दूसरे के साथ समरक्तता के संबंधों के कारण थे।" जाति और दासत्व को गाँव के लक्षणों के रुप में दर्शाया है, परन्तु केवल प्रसंगवश और बहुत ज्यादा कुछ नहीं कहा गया। श्रेणी में अंतर के लिए यहाँ एक अलग संदर्भ है (थोर्नर 1980)। मार्क्स के लिए आत्मनिर्भर समुदायों ग्राम समुदायों के कुछ विशिष्ट लक्षण होते है :

"ये शान्तिपूर्ण ग्राम समुदाय हमेशा प्राच्य निरंकुशतावाद की ठोस नींव थे..... इन्होंने मानव मस्तिष्क को सबसे छोटी संभव सीमा में नियंत्रित किया, इसको अंधविश्वास का अविरोधी साधन बनाया ,साधन बनाया, पारम्परिक नियमों के तहत इसे गुलाम बनाया, इसे सभी भव्यता और ऐतिहासिक उर्जाओं से वंचित किया ..... कि ये छोटे समुदाय जाति के भेद और दासता के द्वारा दूषित थे, कि उन्होंने मनुष्य का परिस्थितियों पर प्रभुत्व बढ़ाने के बजाय बाहरी परिस्थितियों के अधीन किया, कि उन्होंने एक स्व-विकासशील सामाजिक स्थिति को कभी ना बदलने वाली प्राकृतिक नियति में परिवर्तित कर दिया" (मार्क्स)।

1.3.4 मैक्स वेबर

मैक्स वेबर ने दुनिया के उद्विकास और रूपांतरण को विचारों, आचार-विचार और क्रियाओं की बुद्धिसंगत व्याख्या के संदर्भ में देखा है। वेबर के लिए भारत में समाज जो हिन्दू धर्म की परम्परागत भावना पर आधारित है, समाज में तर्कसंगत पूँजीवाद के विकास के लिए तर्कसंगत भावना से रहित है। "अलौकिक" रहस्यवाद-जिसमें मोक्ष की प्राप्ति भौतिक सुख से अलगात की प्रक्रिया द्वारा हो सकती है, की प्रबलता ने लोगों को पारम्परिक विचारों और क्रियाओं पर आधारित कर रखा है।

हालाँकि, प्रसिद्ध विद्वानों की कोई कमी नहीं है जिन्होंने भारत, इसके लोगों और संस्कृति को सकारात्मक भावना के साथ प्रदर्शित किया है। इसलिए हम मार्क ट्वेन के उदाहरण का उल्लेख कर सकते है।

1.3.5 मार्क ट्वेन

अमेरिका का परमप्रिय हास्यकार और एक जाना माना लेखक, सैमुअल लैंगहार्न क्लेमेंस, जो दुनिया में मार्क ट्वेन के नाम से प्रसिद्ध है भारत में जनवरी, 1896 में आया था। मार्क ट्वेन ने प्रसिद्ध तौर पर कहा है कि "भारत की भूमि मानव प्रजाति का पालना, मानव भाषा का जन्मस्थान, इतिहास की जननी, दन्तकथा (किवदन्ती) की दादी (लालन-पालन करनी वाली), और परम्परा की परदादी है।" चाँदनी से बनी एक भूमि अरबी रात में उनके भव्य चमत्कार करने के लिए .....। "उसने लोगों को " हँसमुख और मिलनसार" पाया। "वे दयालु लोग है ..... वह चेहरा और पहनावा जो एक पवित्र आत्मा का संकेत देता है खराब दिल का है ..... भारतीय के बीच दुर्लभ है। भारतीय विरासत पर टिप्पणी करते हुए, ट्वेन ने कहा है : "चीजों की शुरूआत में भारत ने पूरी दुनिया की शुरूआत दी थी। उसकी पहली सभ्यता थी ; वह गहरे विचारकों और सूक्ष्म बुद्धि के व्यक्तियों के साथ लोकप्रिय थी ; उसके पास खदाने, जंगल और उपजाऊ मिट्टी थी .....।"

भारतीय जीवन के तरीके में विविधता ने उसको कोतूहल से भर दिया था। उसने लिखा है "उनका चरित्र और उनका इतिहास, उनकी प्रथाएँ और उनका धर्म हर मोड़ पर आपका पहेलियों से आमना सामना कराता है-रहस्य जो कि पहले से बताए जाने के बाद और अधिक उलझ जाते है।"

ट्वेन बार-बार कहता था कि पूरे विश्व में भ्रमण (यात्रा) में भारत उसकी पसंदीदा भूमि थी। उसको भारतीय जीवन के रंग और विविधता से प्यार था। विश्व भ्रमण में उसने प्रसिद्ध गद्यांश (वाक्य) लिया : यह वास्तव में भारत है- सपनों और प्रेमकथा की, शानदार समृद्धि और झोपड़ियों की, चीतों और हथियारों की, सापों और जंगलों की भूमि ..... मानव प्रजाति का पालना, मानव भाषा का जन्मस्थान, इतिहास की जननी, दन्तकथा (किवदन्ती) की दादी, और परम्परा की परदादी ..... एक भूमि जिसको सभी मनुष्य देखना चाहते है, और एक बार देख लेने के बाद, एक झलक भी, बाकी दुनिया के सभी देश मिलकर भी वह झलक नहीं देंगे (शर्मा 1968).

बोध प्रश्न 2

1) मैकॉले के अनुसार भारत में ब्रिटिश शिक्षा का क्या उद्देश्य था?

.....

.....

.....

.....

.....

2) मार्क्स के अनुसार भारतीय गाँवों की क्या विशेषताएँ है?

.....

.....

.....

.....

1.4 सांस्कृतिक मुठभेड़ : पूर्व और पश्चिम

इस पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि शताब्दियों तक अंग्रजों ने भारतीय समाज और इसके इतिहास को अपनी समझ और कल्पना के अनुरूप वर्णित किया था। भारतीय उपमहाद्वीप और इतिहासकारों में औपनिवेशिक शासन के विस्तार और निरंतरता के तर्क के लिए यह पर्याप्त है। हालाँकि 19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध और 20 वीं सदी के पूर्वार्द्ध से अंग्रेजी शिक्षा के धीरे-धीरे प्रसार और मध्यम वर्ग के उदय के साथ भारत की औपनिवेशिक धारणा, इसकी संस्कृति, समाज और सभ्यता के बारे में लोगों में जन जागरूकता विकसित होने लगी। उन्होंने भारत के प्रति औपनिवेशिक पक्षपात और अल्पसंख्यक धारणाओं पर प्रतिक्रिया देना और आपत्ति जताना शुरू कर दिया। प्रिंटिग प्रेस (छापाखाना) के आगमन, मातृभाषा और इग्लिश दोनो, और बढ़ती संयोजकता (संबंधता) आदि ने इस तरह की अभिव्यक्ति में व्यापक रुप से योगदान दिया।

भारतीय विद्वानों और नेताओं ने ना केवल पश्चिमी संस्कृति बल्कि अपनी स्वयं की संस्कृति के लिए भी आलोचनात्मक दृष्टिकोण विकसित किया। विद्वानों ने दोनों संस्कृतियों की ताकत और कमजोरियों को देखने के लिए सांस्कृतिक संपर्कों को बनाया/विद्वानों द्वारा दृष्टिकोणों का और पश्चिम का चरित्र-चित्रण किया गया।

यहाँ पर यह बताना आवश्यक है कि भारत की एक अनूठी परंपरा है और इस परंपरा के पुनर्जागरण में लिए भारत ने अनेकों आंदोलनों का अनुभव किया। 15वीं शताब्दी में एक लोक प्रिय भक्ति आंदोलन चला जिसने समाज के सभी वर्गों को समान समझा और इसने सगुण और निर्गुण दो परंपरायें विकसित की। पहली विष्णु या शिव भगवान के रूप में वैष्णव तथा शैव परंपराओं में आस्था रखती है। इसने सब जातियों में जमानता की हिमायत की। निर्गुण और अनुयायी आकारहीन ईश्वर में आस्था रखते थे। ये 20वीं सदी के पूर्वार्ध में नगरी दलितों में लोक प्रिय हुई क्योंकि इसने सबको मोक्ष की संभावना प्रदान की। संत रविदास और कबीर इस परंपरा के मुख्य प्रसिद्ध अनुयायी थे। इस परंपरा ने सामाजिक समता का वादा किया।

1.5 भारत की आत्मसातवादी और उदारवादी कल्पना

हालाँकि सामाजिक विचारकों, राष्ट्रवादी विद्वानों के मध्य इन सांस्कृतिक संपर्कों की आवश्यकता और परिणाम को लेकर पर्याप्त अंतर थे, फिर भी वे इस बात से सहमत थे कि पूर्व-औपनिवेशिक युग न तो "अंधकारमय" था और ना ही "गौरव से हीन" था। भारतीय स्वतन्त्रता सेनानियों, कवियों, विद्वानों, दार्शनिकों ने व्यापक रुप से भारतीय समाज में एकता के रेखांकित करने वाले पहलुओं पर प्रकाश डाला जो 'राष्ट्रत्व' प्राप्त करने में एक अग्रदूत था।

आर.जी. भंडारकर और बंकिमचंद्र चटर्जी, रविन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू और अन्य दूसरो के लेखों ने भारतीय एकता के राष्ट्रीय विमर्श की नींव रखने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। कुछ विद्वानों ने भारतीय राष्ट्रत्व की नींव को मजबूत करने के लिए भारतीय समाज की सभ्यतापरक एकता के पहलूओं को रेखांकित किया।

1.5.1 रविन्द्रनाथ टैगोर

टैगोर ने भारत की समावेश के योग्य, विश्वबंधु, करूणामय, उदार और दार्शनिक रुप से सर्वोत्कृष्ट धर्मनिरपेक्ष रूप में कल्पना की है। इसको उन्होंने अपनी उत्कृष्ट कविता 'भारत

तीर्थ' (Indian Pilgrimage) में अत्यधिक विस्तार से प्रतिपादित किया है, कविता में टैगोर ने लिखा है :

"ओह ! माँ, मेरे मन को समुद्र के इस पवित्र तट पर धीरे-धीरे जागने दो। जहाँ पर विश्व की महान आत्माएँ श्रद्धा अर्पित करने के लिए एक साथ आई है। यहाँ फैली हुई बाँहों के साथ मानव रुप में हम परमात्मा को नमन करते है। ..... यहाँ अपनी पूजनीय मातृभूमि को प्यार करते है जहाँ पर विश्व की महान आत्माएँ श्रद्धा अर्पित करने के लिए समुद्र के किनारे पर आई है।"

विदेशियों के भारत में आगमन के संदर्भ में उन्होंने लिखा है : "कोई नहीं जानता किसके निमंत्रण ने इतनी सारी आत्माओं को बुलाया है जो नदी के अशांत प्रवाह की तरह एकत्रित हुए है जो आया और खुद को दैवीय समुद्र में समाहित कर दिया/इस पवित्र में आर्यों, गैर-आर्यों, द्रविड़ों, अफगानों और मुगलों का आगमन हुआ और उन्होंने अपनी वैयक्तिकता को एक सर्वोच्य निकाय में पृथक कर लिया। ..... इस समुद्र तट से कोई भी खाली हाथ नहीं गया जहाँ पर महान आत्माएँ श्रद्धा अर्पित करने के लिए एक साथ आई है। जिन्होंने बड़े-बड़े पर्वतों और रेगिस्तानों को पार किया अपने दिल से फौजी (युद्ध संबंधी) संगीत की तरह तुम्हारे वैभव का गीत गा रहे है और अपने स्थान को स्वंय तुममें पाया। . ..... अंतर के बंधन की भविष्यवाणी को नकारते (दूर फेंकते) हुए, वे सार्वभौमिक भाईचारे में उभरे है।"

उन्होंने प्रत्येक को इस देश में एक उद्देश्य के साथ आमन्त्रित भी किया और उन्होंने में लिखा है :

"आओं, ओह! आर्यों, आओ गैर-आर्यों, आओ हिन्दू और मुस्लिमों। आओ, आओ, ओह! अंग्रेजों, आओ ईसाईयों, आओ बाह्मणों, अपने ह्दय को शुद्ध करो; दलितों और चंडालों (बाहरी-जातियों) का हाथ पकड़ लो/सभी बुराईयों और अनादर को दूर करें। माँ के राज्याभिषेक के लिए जल्दी आओ, जहाँ "मंगल घट" को पवित्र जल से भरा जाना है जो महान आत्माओं के स्पर्श से अभिभूत हुआ है जो श्रद्धा अर्पित करने के लिए समुद्र के किनारे एक साथ आए है।" (http://www.scqtlandyoga.com/Sahaja-yoga-news/2007/07/06/bharat-tirtha/)

टैगोर एक सार्वभौमिकतावादी और एक मानवतावादी थे। वह सभी रूढ़िवादिताओं/कट्टरताओं के खिलाफ थे जो भारतीय समाज में प्रचलित थी। वह समाज में सामाजिक बुराइयों और रूढ़िवादिता की आलोचना द्वारा भारत की एक आदर्श छवि को ढूंढ़ रहे थे। बहुत सी कविताओं और अपने उपन्यासों के बहुत से चरित्रों में उन्होंने मुद्दा उठाया है। इस का पता लगाने के लिए शायद सबसे जटिल उपन्यास गौरा था, बाह्मण परिवार का दत्तक पुत्र जो केवल अपने जन्म और रूढ़िवादिता की निरर्थकता की वास्तविकता को जानने के लिए अति-रूढ़िवादी बन जाता है।

टैगोर एक आजाद भारत के पक्षधर थे (चाहते थे) उन्होंने अंग्रेजी ताकतों के द्वारा स्वतंत्रता सेनानियों की निर्मम हत्याओं के खिलाफ मजबूत आवाज उठाई थी। जलियांवाला बाग नरसंहार के परिणामस्वरूप उन्होंने अपनी नाइट (Knight) की पदवी लौटा दी थी। उन्होंने लिखा "मेरी आवाज घुट गयी है, मेरी बांसुरी ने अपनी लय (धुन) खो दी है, यह अंधेरी रात में जेल में होने जैसा है। तुमने मेरी दुनिया को बुरे सपनों के बोझ तले दबा दिया है। यही कारण है कि मैंने अश्रुपूर्ण भाव से पूछा-क्या तुमने क्षमा कर दिया, क्या तुमने प्रेम किया है,

उन लोगों से जिन्होंने तुम्हारे द्वारा बनाए गए वातावरण को विषैला कर दिया है, जिन्होंने तुम्हारे चिराग की रोशनी को खत्म किया है (मित्र, 2017)।

टैगोर के दृष्टिकोण में भारतीय सभ्यता स्वभाव में 'समन्वयात्मक' थी। यह विविधता में एकता में स्थापित है, सभी सामाजिक और धार्मिक समूहों की विशिष्टता के महत्व को कम किए बिना जो समूह भारतीय समाज को बहुल और यौगिक आधार प्रदान करते है। इसके प्रत्यक्ष विरोध में पश्चिमी सभ्यता में आक्रमकता थी, जिसने विभिन्न संस्कृतियों को जबरन समरूप करने की कोशिश की-एक लक्षण जिसका टैगोर ने कड़ाई से विरोध किया।

1.5.2 गाँधी

गाँधीजी ने भारतीय सभ्यता की आत्मसात प्रकृति के विचार को आगे बढ़ाया। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि स्वतन्त्रता आंदोलन के उद्देश्य की आवश्यकता भारत से अंग्रेजों को खदेड़ना नहीं है। उनके लिए अंग्रेज भी भारतीय समाज में आत्मसात हो जायेंगे जैसे हजारों दूसरे प्रवासी इसमें आत्मसात हो गये है। गाँधीजी ने स्वीकार किया था कि भारत विविधता की एक भूमि है और इसलिए उन्होंने कभी भी 'भारतीय सभ्यता' को 'हिन्दू संस्कृति या हिन्दू सभ्यता के द्वारा प्रतिस्थापित नहीं किया।

गाँधीजी को एक राष्ट्र के रुप में भारत की व्यापक और समावेशी समझ थी। भारतीय राष्ट्र से गाँधीजी का तात्पर्य आम (जनसाधारण) भारतीयों से है, जो उनके धार्मिक, भाषाई, क्षेत्रीय या जातिगत अंतरों के साथ-साथ नए उभरते मध्यम वर्ग से अलग है ..... (गाँधी : xiv)/उन्होंने आगे लिखा : भारत एक राष्ट्र नहीं रह सकता क्योंकि इसमें विभिन्न धर्मों को मानने वाले लोग रहते है। वास्तव में, यहाँ पर जितने व्यक्ति है उतने ही धर्म है, परन्तु जो लोग राष्ट्रीयता की भावना के प्रति जागरूक है एक दूसरे के धर्म में दखल नही देते है। अगर ऐसा करते है, वे एक राष्ट्र माने जाने लायक नहीं है।

वह आगे लिखते है : अगर हिन्दू विश्वास करते है कि भारत को केवल हिन्दूओं को देश होना चाहिए, वे स्वप्नलोक में रह रहे है। हिन्दू, मुस्लिम, पारसी और ईसाई जिन्होंने भारत को अपना देश बनाया है वे देश के साथी हैं और उन्हें केवल अपने हित के लिए एकता में रहना होगा (गाँधी, 52-53)।

गाँधीजी के गाँव पर विचार अद्वितीय है। गाँधीजी ग्रामीण और कुटीर उद्योगों द्वारा पूरक कृषि पर आधारित गाँवों की स्वायत्तता में विश्वास करते थे। वह औद्योगिकरण के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने लिखा : शब्द के आधुनिक अर्थ में भारत को औद्योगिकरण की आवश्यकता नहीं है। भारतीय कृषकों को क्रांन्तिकारी परिवर्तनों की आवश्यकता नहीं है ..... भारतीय कृषकों को एक पूरक उद्योग की आवश्यकता होती है। सबसे स्वभाविक चरखे का परिचय करवाना है, ना कि हथकरद्ये का हथकरद्या हर घर में हो और एक सदी पहले भी ऐसा हुआ करता था (गाँधी, 115)। गाँधीजी प्रत्येक व्यक्ति की आत्मनिर्भरता, गरिमा और स्वायत्तता के लिए थे।

गाँधीजी ने राजनीतिक शक्ति और राज्य के बारे में लिखा है। वह लिखते है : "मेरे लिए राजनीतिक शक्ति एक लक्ष्य नही है परन्तु लोगों के जीवन के हर एक क्षेत्र में उनकी स्थिति को सुधारने का एक साधन है। राजनीतिक शक्ति का तात्पर्य राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व के द्वारा राष्ट्रीय जीवन को नियंत्रित करने क्षमता से है। अगर राष्ट्रीय जीवन जीवन स्वंय-नियंत्रित होने के लिए अत्यधिक परिपूर्ण हो जाता है, तब प्रतिनिधित्व आवश्यक नहीं है। इसके बाद

वहाँ प्रबुद्ध अराजकता की स्थिति है। इस प्रकार के एक राज्य में प्रत्येक अपना स्वंय का शासक है। वह अपने आप को इस तरीके से शासित करता है कि वह कभी भी अपने पड़ोसी के लिए बाधा नहीं है। आदर्श राज्य में, इस प्रकार कोई राजनीतिक शक्ति नही है क्योंकि वहाँ कोई राज्य नहीं है। लेकिन आदर्श जीवन में कभी भी पूर्ण रुप से साकार नहीं होता है। इसीलिए थोरो का शास्त्रीय कथन है कि वह सरकार सबसे अच्छी है जो कम से कम नियंत्रित करती है" (यंग इण्डिया, 2-7-31)।

1.5.3 नेहरू

पंडित नेहरू की कल्पना में विभिन्न प्रकारों के बहुल देश के रुप में भारत दिखाई दिया है। उन्होंने लिखा है कि 'हिन्दुस्तान का दिल, जैसा कि यह बहुत समय से, प्राचीन और मध्यकालीन सभ्यता दोनों का स्थान और केन्द्र, बहुत सारी प्रजातियों और संस्कृतियों के पिघलने वाला बर्तन माना जाता है' उन्होंने आगे लिखा है : जब मै भारत के बारे में सोचता हूँ : असंख्य छोटे गाँवों के साथ विस्तृत खेत; वे नगर और शहर जिन्हें मैने घूमा है ; बारिश के मौसम का जादू जो सूरती तपती भूमि में जीवन डालता है और इसे अचानक सुंदरता और हरियाली के एक शानदार विस्तार में बदल देता है; बड़ी नदियाँ और बहता हुआ पानी; अपने ठंडे। सूने परिवेश में खैबर पास (दर्रा या मार्ग); भारत का दक्षिणतम छोर; लोगों को, व्यक्तिगत रुप से और जन-समुदाय में; और, सबसे ज्यादा, बर्फ से ढका हिमालय या नए फूलों से ढ़की और हमारी पसंद की छोटी नदी के साथ, वसंत में कश्मीर में कुछ पर्वत-घाटी और इसलिए मैंने एक गर्म, उपोष्णकटिबंधीय देश की अधिक सामान्य तस्वीर के बजाय इस पर्वत पृष्ठभूमि को चुना है। दोनों ही चित्रण सही है, भारत के लिए उष्ण कटिबंधों से समशीतोष्ण क्षेत्रों तक, भूमध्य रेखा के पास से एशिया के ठंडे दिल (मध्य एशिया) तक फैला है (1946 : 49-50,54)।

भारत के लोगों के मध्य विविधता और एकता के विषय में उन्होंने कहा है कि भारत की विविधता आश्चर्यजनक है ; यह स्पष्ट है; कि यह सतह पर स्थित है और कोई भी इसको देख सकता है। यह खुद को भौतिक रंग-रुप (दिखाने) के साथ-साथ कुछ मानसिक आदतों और गुणों के साथ भी संबंधित करता है। उनके प्रजातीय वंशस्त्रोत समान नही हैं, जबकि उनके माध्यम से चलने वाली आम किस्में हो सकती है ; वो चहरे और आकृति, खाने और वस्त्रों, और, बेशक, भाषा में भिन्न है। उन्होंने मगर पाया कि हालाँकि बाहरी तौर पर लोगों के मध्य विविधता और अनन्त बहुरूपता थी, मगर हर जगह एकता का जबरदस्त प्रभाव था, जिसने हम सभी को पिछले युगों में एक साथ रखा था, चाहे जो भी राजनीतिक भाग्य या दुर्भाग्य हमारे सामने आया हो। ..... यह आवश्यक एकता इतनी शक्तिशाली थी कि कोई भी राजनीतिक विभाजन कोई आपदा और तबाही इसे मिटाने में समर्थ नहीं थी ..... वह भारतीय जीवन, या वर्गो, जातियों, धर्मों, प्रजातियों, सांस्कृतिक विकास के विभिन्न अंशों की विविधताओं और विभाजनों के बारे में पूर्ण रुप से जागरूक थे। फिर भी उन्हें लगता था कि एक लम्बी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और जीवन पर एक सामान्य दृष्टिकोण वाला देश एक ऐसी भावना विकसित करता है जो उसके लिए खास है और जो अपने सभी बच्चों पर प्रभाव डालती है, हालाँकि वे आपस में भिन्न हो सकते हैं ..... परन्तु अगर हम भारत के भविष्य का मजबूत और सुरक्षित और सुन्दर, घर बनाने जा रहे है, तो हमें आध ाार के लिए गहरा खोदना होगा (पूर्वोक्त 52-53)।

भारत माता क्या है और भारत माता कौन है? उन्होंने लिखा है : भारत माता अनिवार्य रूप से ये लाखों लोग थे और उसकी जीत से तात्पर्य इन लोगों की जीत से है। तुम इस भारत

माता के अंश हो, मैंने उनको बताया, तुम एक तरीके में खुद भारत माता हो, और जैसे ही यह विचार धीरे-धीरे उनके दिमाग में बैठ जायेगा, उनकी आँखे ऐसे चमकेगी जैसे मानो उन्होंने कोई बड़ी खोज कर ली हो (पृष्ठ 54)।

सभ्यता की भोर से लेकर किसी तरह एकता का एक सपना भारत के मस्तिष्क पर कब्जा किए हुए है। उस एकता की कल्पना नहीं की गई थी जो बाहर से लागू की गयी हो, जो बाहयों या मान्यताओं का भी मानकीकरण हो। यह कुछ अधिक गहरी थी और, इसकी तह में, विश्वास और रीति की व्यापक सहिष्णुता का प्रचलन रहा और हर किस्म को स्वीकार किया गया और यहाँ तक की प्रोत्साहित भी किया गया। उन्होंने विभिन्नताओं के संदर्भ में भी लिखा है। "विभिन्नताओं, छोटी या बड़ी, को हमेंशा एक राष्ट्रीय समूह के अन्दर भी देखा जा सकता है, चाहे यह एक साथ बंधा हुआ हो। उस समूह की आवश्यक एकता तब प्रकट होती है जब इसकी दूसरे राष्ट्रीय समूह से तुलना होती है, हालाँकि दो समीपवर्ती समूहों के बीच विभिन्नताएँ अक्सर फीकी पड़ जाती है या सीमाओं के पास परस्पर मिश्रित हो जाती है, और आधुनिक विकास की प्रवृत्ति सब जगह कुछ एकसमानता उन्पन्न करने की है। प्राचीन और मध्यकालीन समय में, आधुनिक राष्ट्र का विचार अस्तित्वहीन था, और सामंतवादी, धार्मिक, प्रजातिय, या सांस्कृतिक संबंधों की महन्ता अधिक थी। फिर भी मुझे लगता है कि लगभग किसी भी समय पर लिखित इतिहास में एक भारतीय ने भारत के किसी भाग में कम या ज्यादा घर पर पर किया होगा" (नेहरू. 55)।

1.5.4 अम्बेडकर

अम्बेडकर का गहरा चिंतन भारत में सभी के लिए समानता और न्याय पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करने के विषय में था। हालाँकि वह भारतीय समाज में सामाजिक विभाजन से बहुत चिंतित थे। जैसे ही राष्ट्रवाद एक विषय/मामला बना अम्बेडकर ने बताया कि "दार्शनिक रुप से, संभवतः एक राष्ट्र को एक ईकाई माना जा सकता है परन्तु समाजशास्त्रीय रुप में, ऐसा संभव नही है क्योंकि यह बहुत से वर्गों से बना है और राष्ट्र की स्वतन्त्रता, अगर यह एक वास्तविकता है, को राष्ट्र में स्थित विभिन्न वर्गों को स्वतन्त्रता प्रदान करनी चाहिए, खास तौर पर उनको जिनको दास (नीच) वर्गो की तरह देखा जाता है। " वह आगे लिखते है 'राष्ट्रीयता एक तरह की चैतन्यता की भावना है जो एक तरफ इसे संजोने वाले लोगों को एक साथ बाँधती है और इतना मजबूती से कि यह आर्थिक संघर्षो या सामाजिक श्रेणियों से उत्पन्न सभी विभिन्नताओं को कुचल देती है और दूसरी तरफ, उसे संजोने संसाधन वाले लोगों सेवा कराता है जो अपनी तरह के नहीं है। यह एक भावना है अन्य किसी दूसरे समूह से संबंधित न होने की। यह उसका सार है जिसे राष्ट्रयीता और राष्ट्रीय भावना कहा जाता है।'

उनके लिए सभी वर्गो के लिए समानता सुनिश्चित करने के लिए एक गम्भीर और वैचारिक प्रतिबद्धता राष्ट्रवाद को साकार करने की एक शर्त है। भारत में राष्ट्रीयता ना केवल अंग्रजों की औपनिवेशिक ताकतों के प्रभुत्व के खिलाफ विरोध करने के लिए उभरी थी बल्कि यह उच्च जातियो के निम्न जातियों पर आन्तरिक प्रभुत्व के खिलाफ भी उभरी थी। उनके लिए असमानता के अंदर अछूतों को विशेषाधिकार प्राप्त होगा ; अन्यथा वे गुलामी की स्थिति में रहेंगे। उन्होंने लिखा है : जिस दिशा में चाहों उसमें मुड़ जाओं, जाति वह राक्षस है जो तुम्हारा रास्ता काटेगा (रोकेगा) ही। "अम्बेडकर एक जाति रहित समाज को चाहते थे जो सभी नागरिकों के लिए समानता, भाईचारा और न्याय जैसे संवैधानिक सिद्धांतों पर आधारित हो। (हम अम्बेडकर के भारत के विचारों के बारे में और अधि कइस पाठ्यक्रम की आगे की ईकाई में विचार करेंगे)।

1.5.5 सांस्कृतिक राष्ट्रवादी परिकल्पना

सांस्कृतिक राष्ट्रवादियों ने भारत को एक ऐसी पारंपरिक सांस्कृतिक इकाई के रूप में देखा है जो हिंदुत्व के आध्यात्मिक ethos की नीव पर खड़ी है। यह विचार भारत की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक भाषायी एकता की अनुठी अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करता है। सावरकर के लेखन (1923) भारतीय राष्ट्रवादिता की जड़ों का वंशगत समाज प्रजाति, धरा, इतिहास, भाषा, संस्कृति और समान अन्यों के दावों में पता लगाती है; ढूंढती है। सावरकर व्याख्या करते हैं कि सिंधुस्थान/हिंदुस्थान एक राष्ट्र और एक प्रजाति को समान पितृभूमि और इस लिए समाज रक्त के ..... हिंदु उन आर्यों के वंशज है। जिन्होंने सिंधु के तटों पर अपने घर बनाये ..... राष्ट्रवादिता की भावना को विकसित किया ..... हिमालय से सागरों तक की समस्त भूमि को एक संप्रभुता के छत्र तल किया; कि हिंदुस्थान उन हिंदुओं की भूमि है जिन्हें अरबों, पारसियों, बलूचों, तुर्की और भुगल आक्रांताओं का सदियों तक सामना करना पड़ा। इस लंबे उग्र संघर्ष से गुजरने के बाद ही भारत के जन स्वयं के हिंदु होने के विषय में गहन रूप से सचेत हुए और एक राष्ट्र के रूप में जुड़े। सावरकर के लिए हिंदु एक हैं क्योंकि उनकी हिंदु संस्कृति की समान संस्कृति (सभ्यता) अपनाये हुए हैं और इस संस्कृति और इस प्रजाति के इतिहास को अभिव्यक्त करने और के साधनों के लिए संस्कृत को चुना गया है। (सावरकर 1923:4—12 43, 92.115) .....।

बोध प्रश्न 3

1) भारत में गांव के विषय में गांधी के विचार पर 50 शब्दों में टिप्पणी करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) पंडित नेहरू के अनुसार भारत माता कौन है?

.....

.....

.....

.....

.....

1.6 भारत की राष्ट्रीयता और विशिष्टता

भारत ने एक लम्बे संघर्ष के द्वारा स्वतन्त्र राष्ट्र राज्य का दर्जा प्राप्त किया है। भारत में समाज सांस्कृतिक समन्वयता के विचार पर आधारित है। यह संवाद, अनुकूलन, संश्लेषण, पारस्परिकता, सहिष्णुता और एक दूसरे के लिए आपसी सम्मान की निरन्तर संस्कृति पर आधारित है। सभी धार्मिक समूहों के उदारवादी लोकाचार स्वतन्त्रता के राष्ट्रीय प्रतीक का हिस्सा रहे है। ब्रेनॉड एस. कोहन ने लिखा है : एक राष्ट्र और लोगों के साथ एक अकेला

अतीत, एक ही परम्परा और एक ही सांस्कृतिक पहचान स्थापित करने का प्रयास भारत में सामान्यतः असफल प्रमाणित हुआ है। स्वतन्त्रता-पूर्व भारत में हिन्दू नायकों और प्रतीकवाद के प्रयोग ने हिन्दूओं और मुसलमानों के बीच शत्रुताओं को बढ़ावा दिया था। भारत, स्वतन्त्रता के बाद धर्म निरपेक्ष राज्य के रुप में स्थापित हुआ, ने अपने झंडे के लिए सावधानीपूर्वक गैर-हिन्दू प्रतीकों को चुना जिस पर नियम का बौद्ध चक्र था। नयी सरकार ने राष्ट्रीय मुहर के रुप में अशोक के सिहों को चुना, अशोक एक बौद्ध शासक था ; राष्ट्रगान के रुप में, उन्होंने वंदे मातरम को अस्वीकार कर दिया जो देवी माँ और हिन्दू देवता का आहवान करता है और जो मुस्लिम विरोधी भावना रखता है क्योंकि इसकी उत्पत्ति बंकिम चन्द्र चटर्जी के एक उपन्यास में हुई है। बंकिम चन्द्र चटर्जी के उपन्यास की तुलना में टैगोर की एक कविता, जन गण मन को लिया गया, जो भारत के क्षेत्रों और लोगों की एक सूची है (कोहन 54)।

संवैधानिक रुप से भारत एक राज्य और एक नागरिकता पर आधारित है। यह कानून की नजरों में प्रत्येक नागरिक को समान मानता है। नागरिकों के लिए समानता, भाईचारा और न्याय भारतीय संविधान की आधार शिला रहा है। हालाँकि, व्यक्तिगत अधिकारों के साथ-साथ एक बहुल (मिश्रित) समाज की नींव प्रशस्त करने के लिए भारत के संविधान ने नियमानुसार प्रत्येक सांस्कृतिक और धार्मिक समूहों को अपनी सांस्कृतिक क्रियाकिलापों को बढ़ावा देने और सुरक्षा देने के लिए भी अवसर दिये है। इसने संविधान के अनुच्छेद 19-22 के द्वारा व्यक्तिगत अधिकारों को स्थान प्रदान किया है। अनुच्छेद 19 स्वतंत्रता के व्यक्तिगत अधिकार को सुनिश्चित करता है (भाषण और अभिव्यक्ति की आजादी; शान्तिपूर्वक और बिना हथियारों के एकत्रित होने के लिए ; समितियों या संघो को बनाने के लिए ; भारत की सीमा के अन्दर स्वतन्त्रतापूर्वक भ्रमण के लिए ; किसी भी व्यवसाय के अभ्यास के लिए, या किसी भी व्यवसाय, व्यापार या धंधे को करने के लिए।

अनुच्छेद 20 : अपराधों के लिए सजा के संबंध में व्यक्ति को संरक्षण प्रदान करता है।

अनुच्छेद 21 : व्यक्ति को जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का संरक्षण प्रदान करता है।

अनुच्छेद 22 : व्यक्ति को गिरफ्तारी और कुछ मामलों में नजरबंदी के विरूद्ध संरक्षण प्रदान करता है।

भारतीय संविधान अनुच्छेद 15 और 26 के द्वारा सामूहिक अधिकारों को भी जगह प्रदान करता है। अनुच्छेद 15(4) राज्य को किसी सामाजिक और शैक्षिणिक रुप से नागरिकों के पिछड़े वर्गो या अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों की उन्नति के लिए विशेष प्रावधान बनाने की आज्ञा देता है। अनुच्छेद 26 प्रत्येक धार्मिक समूह को धार्मिक और धर्मार्थ उद्देश्यों के लिए संस्थाओं को स्थापित करने और संचालित करने का, नियमानुसार अपने मुद्दों (कार्यो), सम्पत्ति का प्रबंधन करने का अधिकार देता है।

बोध प्रश्न 4

1) भारत के राष्ट्रीय प्रतीक में धार्मिक बहुलवाद पर एक लेख लिखिए।

.....

.....

.....

.....

2) भारतीय संविधान में समूह अधिकारों का क्या स्थान है?

.....

.....

.....

.....

.....

1.7 सारांश

भारत आवश्यक रुप से एक बहुल (मिश्रित) समाज है जो बहुसंस्कृतिवाद पर आधारित है। भारत का लम्बा ऐतिहासिक अतीत है। जिसको इस्लाम, ईसाई, उपनिवेशवाद आदि बाहरी ताकतों का सामना करना पड़ा है। जिन्होंने विभिन्न प्रकार से भारतीय समाज की समग्र संस्कृति के ताने-बाने में सहयोग दिया है।

हालाँकि भारतीय समाज के आधार का विद्वानों द्वारा विविध चित्रण किया गया है। इस इकाई ने आपको औपनिवेशिक प्रशासकों, हीगल, मार्क्स, एंजेल, वेबर इत्यादि के भारतीय समाज को उजागर करने वाले विचारों की एक झलक प्रदान की है। इस इकाई ने स्वामी विवेकानंद, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गाँधी , पंडित नेहरू और अन्यों के विचारों को भी रेखांकित किया है। भारत की आदर्श छवि भारत के संविधान में निहित है, हमने इस छवि के कुछ पहलुओं को भी छुआ है। यह इकाई इस पाठ्यक्रम की आगे आने वाली इकाईयों की विस्तार में चर्चा की जाने वाली इकाईयों की अग्रदूत है।

1.8 संदर्भ

सांस्कृतिक लोकाचार : लोगों का विश्व दृष्टिकोण

सभ्यता : सामाजिक और सांस्कृतिक विकास उन्नत अवस्था

राष्ट्र : राजनीतिक और सांस्कृतिक समानताओं के आधार पर खुद को पहचानने वाले लोगों का एक समूह

प्राच्यविद् : उन विद्वानों को संदर्भित करता है जो एशियाई समाजों, उनकी संस्कृति, भाषाओं, इतिहास, साहित्य और उनकी राजनीति का अध्ययन करते है।

कुछ उपयोगी पुस्तके

Dutta, Rajshree (2011). Measuring Party System Change in India: An Analysis at the National and at the Level of States, 1952-2009.*The Indian Journal of Political Science*, Vol. 72(3): 663-678.

Hasan, Zoya (Edited) (2002).*Parties and Party Politics in India*. New Delhi, India. Oxford University Press.

Jaffrelot, Christofer and Sanjay Kumar (2009) .*Rise of the Plebeians?The Changing Face of Indian Legislative Assemblies.* New Delhi. Routledge.

Kothari, Rajni (1970). *Politics in India*. New Delhi, India: Orient Longman.

Manor, James (2002).Parties and the Party System. In the Edited book *Parties and Party Politics in India* by Zoya Hasan. New Delhi, India. Oxford University Press. pp. 431-474.

Paul Brass (1990). *Politics of India Since Independence*. Cambridge, UK: Cambridge University Press.

Ross, Gilbert Ralph (1954). Democracy, Party, and Politics, *Ethics*, Vol. 64(1): 100-125.

Varshney, Ashutosh (2003), *Battle Half Won: India's Improbable Democracy*, Penguin/Viking

Yadav, Yogendra andPalshikar, Suhas (2009), "From Hegemony to Convergence: Party System and Electoral Democracy: Party System and Electoral Democracy in Indian States", *Journal of Indian School of Political Economy* 15 (1-2), pp. 5-44.

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 2 गाँधी और अम्बेड़कर*

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 गांधी औश्र अंबेडकर : जीवन और शिक्षा

2.3 गाँधी जी का राजनैतिक कैरियर

2.4 गाँधी जी की सत्याग्रह और अहिंसा की हिमायत

2.5 गाँधी की राष्ट्रवाद की विरासत और धर्मनिरपेक्षता

2.6 राष्ट्रवादी आंदोलन और गाँधी जी की भूमिका

2.7 गाँधीः भारत में सीमांतिकरण समावेश और बहिश्करण पर दृष्टिकोण

2.8 बी.आर.अम्बेडकर का राजनैतिक कैरियर

2.9 बी.आर.अम्बेडकर सामाजिक-राजनीतिक दर्शन

2.10 बी.आर.अम्बेडकर के सीमांतिकरण और सामाजिक समावेश पर विचार

2.11 सारांश

2.12 संदर्भ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ सकेगेः

- गाँधी और अम्बेडकर जी का राजनीतिक कैरियर; के विषय में
- गाँधी जी के सत्याग्रह और अहिंसा
- राष्ट्रीय आंदोलनो में गाँधी जी की भूमिका
- हाशिए पर और सामाजिक समावेश पर अम्बेडकर और गाँधी का दृष्टिकोण;
- अम्बेडकर का सामाजिक, राजनीतिक दर्शन।

2.1 प्रस्तावना

इस अध्याय में दो महान हस्तियों महात्मा गाँधी और बी.आर.अम्बेडकर पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

पहला नाम मोहनदास करमचंद गाँधी है, जिन्हे महात्मा गाँधीं के नाम से जाना जाता है। और दूसरा नाम है। बाबा साहेब अम्बेडकर। ये 'भारतीय संविधान के मुख्य वास्तुकार' है दोनो ही, जाने माने सामाजिक कार्यकर्ता और राष्ट्र निर्माता एवं समाज सुधारक है। भारतीय सामाजिक संरचना को समावेशी और समतावादी बनाने में उनकी भूमिका की पूरे विश्व में सराहना की गई है। उन्होने ऐतिहासिक रूप से निहित संरचनात्मक भेदभाव, शोषण, इसके अलावा सीमान्तिकरण (सामाजिक अपवर्जन) जातिभेद, रंगभेद, धर्म, क्षेत्र, लिग, वर्ग भेदों

* यह इकाई मुद्दसिर यूसुफ द्वारा लिखित है।

आदि के आधार होने वाले तिरस्कार के विरूद्व संघर्ष किया। सीमांत समुदायो और समूहों के लिए अहिंसक संघर्ष, सामाजिक समानता, न्याय और सशक्तीकरण का मार्ग अभी भी अधूरा है, जो महात्मा गाँधी और डा.अम्बेडकर की अपूर्ण परियोजना है। वे भारतीय समाज की लोकतांत्रिक भावना, धर्मनिरपेक्ष चरित्र, सांस्कृतिक और धार्मिक सदभाव में दृड़ विश्वास करते थे। ये अध्याय ना तो उनकी जीवनी है, जो उनके प्रतिदिन की जीवन चर्च के विषय में बताये, ना ही अम्बेडकर और गाँधी के सामाजिक - राजनीतिक विचारो पर विशेष बल देता है। यहाँ उनके लेखन के उन भागों पर विचार करने और प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है, जो प्रकृति में पारलैकिक है। इस अध्याय के अर्न्तगत पहले यह विचार किया गया है कि कैसे महात्मा गाँधी ने समानता, धर्मनिरपक्षता, बहुलताबाद और विभिन्न सीमान्त वर्गो के सशक्तिकरण और अहिंसा के विचारो के आधार पर एक राष्ट्र के रूप में भारत की कल्पना की। इसी तरह अध्याय के अगले भाग में डा.अम्बेडकर की बौद्विक कल्पना और समाज के कल्याण विशेष रूप से शोषित वर्गो के सीमांतिकरण के विरूद्व योगदान पर विचार और तर्क वितर्क किया गया है।

2.2 गांधी और अंबेडकर : जीवन और शिक्षा

महात्मा गांधी का जन्म गुजरात में 2 अक्टूबर 1869 में हुआ था, वह गांधी परिवार के सबसे छोटे बच्चे थे। एक स्थानीय राजनेता के रूप में अपने पिता की स्थिति के कारण परिवार प्रांत के भीतर स्थानांतरण के आधीन था, और जब गांधी जी 7 वर्ष के थे तब उनके पिता राजकोट चले गए । उन्होने अपनी प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा वहां पूरी की कॉलेज की शिक्षा पूरी करने के बाद वे कानून की पढ़ाई के लिए इंगलैण्ड गए। उन्होने इंगलैण्ड में तीन साल बिताए, सन 1891 में एक आधिकारिक बैरिस्टर बना दिये गये जिसे अंग्रेज 'कॉल्ड टू द बार' (called to the Bar) कहते थें। फिर वह अदालत में कानूनी प्रथा शुरू करने के लिए भारत लौट आए। शुरू में उन्हे बोलने में हिचकिचाहट हुई और अपने पहले मुकदमें की पेशी में वे असफल रहे लेकिन उन्होने मुकदमें से ली गयी राशि लौटा दी। बाद में गांधी जी राजकोट के व्यापारी के साथ काम करने का अवसर प्राप्त हुआ जो दक्षिण अफ्रीका में व्यवसाय करता था। गांधी जी ने एक वर्ष के लिए दक्षिण अफ्रीका जाने का फैसला लिया। पांडे (2012) कहते हैं कि गाँधी जी 20 साल दक्षिण अफ्रीका में रहे। इन 20 सालों के अफ्रीका निवास दौरान उन्होने वहां भारतीयों की सामाजिक आर्थिक स्थिति का गहन अध्ययन किया। गाँधी जी को खुद नस्लीय भेदभाव का सामना करना पड़ा जब उन्हे प्रथम श्रेणी के डिब्बे में यात्रा करने की अनुमति नहीं मिली, जबकि उनके पास प्रथम श्रेणी के डिब्बे का टिकट भी था। मार्ट्रिसब्रर्ग की इस घटना ने एक नए गांधी का जन्म दिया। उन्होने अपनी आवाज उठाई और दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों पर हो रहे अन्याय, भेदभाव और अभद्र व्यवहार के विरूद्व विद्रोह किया। (पांडे, 2012: पृष्ठ 355)

चक्रवर्ती (2007) बताते है कि गाँधी जी ने उपमहाद्वीप में प्रभुत्व के विभिन्न रूपों, चाहे प्राचीन हो या आधुनिक, को चुनौती दी और उन्होने एक व्यापक सिद्वांत को विकसित किया है, जो 'अच्छे समाज' की बुनियादी परिरेखा के बारे में और अहिंसा के महत्व के बारे में राष्ट्रों की सीमाओ से परे तक पहुचता है। ''जातीयता'' धर्म और अन्य विशिष्ट रूप से भारत की सामाजिक आर्थिक विशेषताओं पर ध्यान खींचते हुये, गाँधी ने राष्ट्रवाद की एक विशिष्ट सांस्कृतिक दृष्टि को स्पष्ट तथा व्यक्त करने की कोशिश की– ऐसी दृष्टि जो स्वतंत्रता संग्राम के दौरान तत्काल बहुत लोकप्रिय हुई थी (चक्रवर्ती, 2007, पृष्ठ 2)

डा. बी. आर. अम्बेडकर जी का जन्म 14 अप्रैल 1891 में महाराष्ट्र के रत्नागिरी जिले में अम्बेडगाँव में हुआ था। उनके पिता रामजी सकपाल और दादा जी मालो जी सकपाल दोनो ब्रिटिश सेना में कार्यरत थे। उनकी माता का नाम भीमा बाई था, जब वह मात्र 6 वर्ष के थे तो उनकी माता का देहांत हो गया (त्रिवेदी 2012:1)। वह गरीव परिवार में पैदा हुए जो भारत में अस्पृश्य समुदाय के नाम से जाना जाता था। अछूतों में कई अलग-अलग समूह शामिल थे जो हिन्दू समाज के सबसे निम्न वर्ग का गठन करते थे (कीर, 1954:1)। बी. आर. अम्बेडकर बाबा साहेब के नाम से लोकप्रिय थे। राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत के महान बुद्विजीवियों में उनका नाम गिना जाता है। डा. अम्बेडकर की शिक्षा मुबई में एलफाइनस्टोन (Elphinstone) कॉलेज में, फिर न्यूयॉर्क में कोलंबिया विश्वविद्यालय में, और लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स और इन्स ऑफ कोर्ट में हुयी। तत्पश्चात् भारत लौटने वे पर दलितों के सबसे महान नेता बन गए थे। (पृष्ठ 39) वहां जिस प्रोफेसर ने उन्हे व्यक्तिगत रूप से प्रभावित किया वह ''जॉन डेवी'' (John Dewey) थे। बी. आर. अम्बेडकर जी का ज्ञान, देश में दलित लोगों के समावेश और शोषितो की मुक्ति के लिए संघर्ष अत्यंत सराहनीय है।

ऐतिहासिक रूप से भारतीय समाज जाति, लिंग, धर्म, क्षेत्र के मामले में खंडित है लेकिन अम्बेडकर ने हमें वह कानूनी ढाँचा दिया है, जो सामाजिक और आर्थिक रूप से एक समतावादी व्यवस्था स्थापित करने में सहायक हुआ है। जयसवाल (2008) के अनुसार अम्बेडकर का शुरुआती बिन्दु स्वतंत्र भारत के संविधान के संकलन में महान योगदान था, जिसने सर्वाधिक अपवर्जित अर्थात अस्पृश्य के लेबल को खारिज किया। जिसमें विशेष रूप से अछूत वर्गो के न्याय के लिए लिखा गया है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि, वर्तमान राजनीतिक परिस्थिति मे अम्बेडकर के समग्र दृष्टिकोण को पूरी तरह से भुला दिया गया है। (जेनी 2013 खड़:22)

2.3 गांधी का राजनैतिक कैरियर

गांधी जी की राजनीतिक अहिंसा की अवधारणा, जिसे मूल रूप से ''हिंद स्वराज'' में वास्तविक रूप प्रदान किया था ऐसा कथन है जिसका पालन गांधी जी ने स्वयं अपने जीवन के अंतिम दिनों तक किया था। (मुखर्जी 20.16.69)। 1915 में ब्रिटिश शासन से लाखों भारतीयों को मुक्त कराने के लिए गांधी जी एक मुक्तिदायिनी शक्ति के रूप में भारत आए। जब उन्होने भारतीय राजनीति में प्रवेश किया तो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अराजकता की स्थिति में थी। नरमपंथियों और चरमपंथियों के बीच संघर्ष (विवाद) के संकट से कांग्रेस ग्रस्त थी।

जैसा कि, ऊपर हमने उल्लेख किया है, कि गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में दो दशक तक प्रवास किया लेकिन इन वर्षो ने उन्हे एक महान वकील नहीं बनाया, बल्कि उन्हे एक सामाजिक कार्यकर्ता राजनीतिक नेता, रणनीतिकार और एक महान विचारक बना दिया। भारत को ऐसे कुशल राजनेता का इंतजार था जो भारतीय राजनीति का नेतृत्व करके स्वतंत्रता आंदोलन का आयोजन करे (राव 2014: 80)। गांधी जी प्रचारक नहीं लेकिन कार्यकर्ता थे। गांधी जी राजनीतिक गतिविधियों में विशिष्ट लक्ष्यों को प्राप्त करने के उद्देश्यों से में लगे हुए थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि प्रत्येक उम्र का अपना ''युगधर्म'' है और उनकी उम्र का धर्म राजनीति में उनका विशिष्ट लक्ष्य ''मोक्ष'' को प्राप्त करना था, एवं उनका मानना था कि उनका 'मोक्ष' राजनीति के पालन में है (रे 2008: XV)

2.4 गाँधी की सत्याग्रह और अहिंसा की हिमायत

सत्याग्रह : सत्याग्रह गाँधी के सामाजिक राजनीतिक दर्शन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। सत्याग्रह का साहित्यिक शाब्दिक अर्थ है,''सत्य पर आग्रह'' सत्य का पालन। सत्याग्रह 100 साल से भी पहले अफ्रीका में नस्लीय भेदभाव के खिलाफ प्रतिरोध आंदोलन के रूप में विकसित हुआ था। उन्होने 11 सितम्बर 1906 को ऐम्पायर थियेटर जोहन्सबर्ग में एकत्र हुए भारतीयों को संबोधित किया। गाँधी ने सत्याग्रह का प्रयोग संस्कृत शाब्दिक अर्थ में नही वरन गुजराती अर्थ में किया। जिसका अर्थ था जिद्दी ओर असम्मत हुये बिना किसी बात पर दृड़ रहना। जब दो शब्दो ''सत्य'' और ''ग्राह'' को संयुक्त किया जाता है तो एक सुंदर द्वंद्व संस्कृत अर्थ रूप लेता है, जिसमें सत्य के लिये और सत्य पर आग्रह दोनो निहित होते है। गाँधी जी का सत्याग्रह का सिद्वांत उनके सत्य और अहिंसा के सिद्वांत का एक अभिन्न अंग हैं। गाँधी ने नस्लवाद के प्रति तीव्र संवेदनशीलता, नस्लीय स्वाभिमान की तीव्र भावना और भारतीयता पहचान की भी तीव्र भावना थी। (पारेख 1989: 143)

गांधीं के लिये ''सत्याग्रह'' राष्ट्रीय उत्थान की दिशा में एक सुविचारित कदम और एकीकरण की दिशा में एक आवश्यक आंदोलन था जिसने लोगों को शिक्षित किया और रूढ़ीवादी व्यवस्था को ध्वस्त किया। सत्याग्रह ने लोगो को सुव्यवस्थित करके उनकी राजनैतिक शक्ति का उत्थान किया और ब्रिटिश व्यवस्था को भी धमकी दी। सत्याग्रह की नींव तर्क, नैतिकता और राजनीति पर आधारित थी, यह विवाद पीड़ा, प्रेम और संगठित दबाब की शक्तियों पर टिका था, और प्रदिद्वंद्वी के दिमाग, दिल, और रूचि थे। को प्रभावित करता था। सत्याग्रह ने न केवल राजनीतिक आचरण अपितु राजनीतिक सिद्वांत में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसने एक महत्वपूर्ण क्रिया प्रणाली दी जो न केवल तर्क संगत अनुनय के महत्व को पहचानती थी अपितू इसने इसे अवरूद्व करने और विकृत करने वाली प्रक्रियाओं पर नियंत्रण पाने का पूरा ध्यान रखा। गाँधी जी के सत्याग्रह ने प्रक्रिया की एक संभावित प्रणाली प्रस्तावित की। यह समाज के नैतिक बचावों की धैर्यपूर्वक जाँच करता था, और उजागर करता है, और स्थापित आस्थाओं में उलझे लोगों के डराये हटाये बिना परेशान करने वाले सवाल पूछता रहा है। इसने सैद्धांतिक और दल की सीमा से परे जा कर प्रभावित नागरिको के समुदाय बनाये, नए क्षेत्रों का सृजन कर सुविधाएं जुटानी, शक्तिहीनता की बाह्य रूप से उत्पन्न भावना से स्तब्ध लोगों को नई आशा प्रदान की और उनमें नयी नैतिक उर्जा भरी (पारेख- 1989:166)। कई विद्वानों का मानना है कि, ''सत्याग्रह'' उस समय की संरचनात्मक हिंसा का विकल्प था जो शासन करने वाली सत्ता द्वारा संचालित थी।

चक्रवर्ती (2006) का मानना है कि, सत्याग्रह न केवल प्रकृति में सैद्धांतिक था बल्कि यह औपनिवेशिक शोषण के सामान्य संदर्भ के स्थानीय मुददों के चारो ओर घूमती एक विशिष्ट प्रकार की कार्रवाई को दर्शाता है। इस पद्वति में स्थानीय शिकायतें उन सभी मजबूत राष्ट्रवादी आंदोलनों में मुख्य रूप से उभरी जो कि गाँधी ने संगठित या आरंभ किये थे। जिसकी चर्चा इस अध्याय के अगले भाग में की जाएगी। ''सत्याग्रह'' अनुनय का एक रूप है, जिसका लक्ष्य प्रतिद्वंद्वी पर विजय पाना नहीं बल्कि उचित समझौते के माध्यम से संघर्ष को दूर करना है। सत्य, अहिंसा, आत्म पीडा पर आधारित सत्याग्रह संरचनात्मक परिवर्तन के लिए प्रयुक्त शक्ति है (पृष्ठ 13-17)। गाँधी का सत्याग्रह सभी बुराइयों का समाधान है, और यह सामूहिक जनसंघठन का एक रूप हैं। लेलीवेल्ड (2011) बताते है, कि, सत्याग्रह सामाजिक भागीदारी में शक्तिहीन या सबसे गरीब में भी निर्धनतम लोगों को शामिल करके

राष्ट्रीय लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए संक्रिय संघर्ष के साधन का एक रूप है (पृष्ठ 46)। नैतिक आधार पर गाँधी जी ने हिंसा को खारिज कर दिया, उनके अनुसार अहिंसा किसी भी सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन, अन्तर्राष्ट्रीय संबंधो के लिए एक रचनात्मक पहल है, जिसका समापन सत्ता के शांतिपूर्ण स्थानांतरण में होता है। हिंसा के उपयोग से विरोधी की सच्चाई के विषय में धारणा नही बदलतीः ये उसे अपने दृड़ विश्वासों के विपरीत व्यवहार करने के लिए विवश करती और उसकी नैतिक निष्ठा का अतिक्रमण करती है। उन्होने आगे तर्क दिया कि हिंसा से कभी भी स्थायी समाधान प्राप्त नहीं होता। हिंसा की वारदात तब सफल प्रतीत होती है जब इसने तत्काल उद्देश्यों को प्राप्त किया गया। उसने सोंचा कि हमे एक नई विधि की आवश्यकता है, जो आत्मा को सक्रिय कर सके, व्यक्ति की अव्यक्त नैतिक ऊर्जाओं को जुटा सके, दिल और दिमाग दोनो को छू सके और ऐसा वातावरण तैयार कर सके जो आपसी सोहार्द की भावना से संचालित होकर संघर्ष के शांतिपूर्ण समाधान के लिए अनुकूल हो। गाँधी ने सोंचा कि उनके सत्याग्रह की विधि इन सभी आवश्यकताओं को पूरा करती है (भिखु 2001:68)

अहिंसा : गाँधी के लिये अहिंसा उच्चतम नैतिक सिद्वांत है और आधुनिक समाज में फैले हिंसा के प्रमुख रूपों का विकल्प है। अहिंसा कोई नई प्रघटना नहीं थी लेकिन, ऐतिहासिक रूप से यह प्राचीन भारत मे व्यापक रूप से प्रचलित थी और सामाजिक संरचना का आधार थी। अहिंसा का सिद्वांत अंग्रेजों के खिलाफ उनकी लाभबंदी के केन्द्र बिंदु था। रे (2008) मानते है कि धारणा एक धार्मिक स्वभाव के साथ-साथ विचारों और आलोचनाओं की प्रबद्वता में भी विद्यमान रहती है। गाँधी अहिंसा को, ''जीवन के कानून'' के रूप में और सामाजिक राजनीतिक क्रिया के साधन के रूप में संदर्भित करते हैं (पृष्ठ 91) अहिंसा और सत्याग्रह का गांधी के जीवन और प्रवचनों (शिक्षाओं) में बड़ा महत्व है। ये दोनों गांधी के सामाजिक राजनैतिक हथियार थे, जिनका उपयोग उन्होंने विविध लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये किया। अहिंसा और सत्याग्रह नए आदर्श नहीं थे बल्कि वे हजारों वर्षो से प्रचारित जीवन के शाश्वत सिद्वांत है। परन्तु, गाँधी जी की महान बौद्विक कल्पना ने मानव व्यवहार के इन मूल सिद्वांतों की नए तरीको से पुर्नव्याख्या की है तथा उनके महत्व, प्रासंगिकता, प्रयोज्यता और सार्वभौमिकता को दर्शाया। सत्याग्रह की पहल गाँधी के अहिंसा में निष्ठा की ह्रदय और आत्मा का गठन करती है।

2.5 गाँधी की राष्ट्रवाद की विरासत और धर्मनिरपेक्षता

राष्ट्रवाद : राष्ट्रवाद की कोई सार्वभौमिक परिभाषा नहीं है और इस पर कई विद्वानों द्वारा अलग-अलग बहस की गई है। ब्रैक (2012) का मानना है, कि राष्ट्रवाद के दो अर्थ है, एक अपने देश की भक्ति देशभक्ति की भावना, सिद्वांत या प्रयास और दूसरा एक देश में राजनीतिक स्वतंत्रता के पक्ष में एक आंदोलन है जो दूसरे के नियंत्रण से है या उस का हिस्सा है (पृष्ठ 3)। भारतीय राष्ट्रवादी अवधारणा में कई निहित शक्तियाँ सम्मिलित है जिन्होने स्वतंत्रता आंदोलन को सांचे में ढ़ाला और दृढ़ता से भारत की विविध विचारधाराओं और राजनीति को प्रभावित करती रही। भारतीय राष्ट्रवाद की अवधारणा आधुनिक प्रघटना है जो केवल धर्म पर नहीं बल्कि समावेश और अहिंसा पर आधारित है (शर्मा 2011:7)।

उपनिवेशवाद और अन्य सामाजिक-सांस्कृतिक सीमान्तवाद के खिलाफ गाँधी का संघर्ष भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर था। अहिंसा, सत्याग्रह और स्वराज की धारणा जैसे उनके धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण समाज के सभी वर्गो के लिए समावेशी थे। बोस (1953) बताते है कि, ''गाँधी हिन्दू और मुस्लिम आधार पर भारत के विभाजन के

विभाजन के विरोध में थे, क्योंकि इससे सांप्रदायिक समस्या का कोई हल नहीं हो रहा था। अपने तरीके से, उन्होने योजनाए बनाई, नोआखली और बिहार में अपने काम के छोटे से कोने में सामाजिक न्याय और सामाजिक एकता के आधार को बनाने के लिये धार्मिक सहिष्णुता की स्थिति पैदा करने का प्रयत्न किया।

धर्मनिरपेक्षता : भारत में धर्मनिरपेक्षता की समझ पश्चिम से अलग है। गाँधी ने ध र्मनिरपेक्षता के आधुनिक मत को समझा और वे बेहद दृढ़ता से धर्म आधारित राजनीति के खिलाफ थें। गाँधी जी चाहते थे कि भारत हर धर्म के लिए मातृभूमि बने। उन्होने ऐसे राष्ट्र की कल्पना की, जो सभी धार्मिक निष्ठाओं और जीवन के सभी सामाजिक सांस्कृतिक पहलुओं की गारंटी लेता है और उनका सम्मान करता है। उनके अनुसार धर्म के राजनीति, अर्थव्यवस्था, शिक्षा और सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन के अन्य क्षेत्रों से अलग रहना चाहिए। उनका मानना था कि, एक बहु-धर्म वाले समाज और धर्मनिरपेक्ष राज्य में सभी वर्गो के लिए लोगों को सार्वजनिक व निजी-तौर पर अच्छी तरह से पोषित और सम्मानित किया जाना चाहिए। सबसे महत्वपूर्ण विचार थौ कि किसी एक धर्म को दूसरों पर हावी होने की अनुमति नहीं हो। धर्मनिरपेक्षता उपनिवेशवाद के खिलाफ भारतीय लोगों की एक जुट शक्ति के रूप में उभरी और इसका मतलब सांप्रदायिकता का विरोध भी रहा (बैनः 2009:2)। वर्मा (1959) का मानना है कि गाँधी जी चाहते थे कि भारत एक सच्चा आध्यात्मिक राष्ट्र बने, जो सत्य, शांति, अहिंसा निर्भयता को शक्ति से अधिक और दान को स्वयं के प्रेम से बढ़कर महत्व दे। गाँधी राष्ट्रवाद की आघ्यात्मिक अवधारणा के हिमायत करते हैं। गाँधी के अनुसार राष्ट्रवाद ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में बढ़ता है और इसे राजनीतिक घोषणाओं या औचित्य के सिद्वांतों द्वारा बनाया नहीं जा सकता है। वह दो राष्ट्र के सिद्वांत के विरोधी थे। गाँधी के आदर्श राष्ट्रवाद की बुनियादी अवधारणा, अमीर और गरीब के बीच भेदभाव, अस्पृश्यता, का उन्मूलन और लैंगिक समानता, शांति, आपसी सहयोग और मानव एकतां और हर धर्म के प्रति सम्मान थी (पृष्ठ122)

बोध प्रश्न

1) सत्याग्रह की गांधीवादी अवधारणा की व्याख्या करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) सहोप में अहिंसा की विचारधारा को समझायें।

.....

.....

.....

.....

.....

2.6 राष्ट्रवादी आंदोलन और गाँधी की भूमिका

भारत लौटने के बाद चार साल के अंदर वे एक शक्तिशाली राष्ट्रीय नेता बन गए थे। उनकी बौद्विक कल्पना प्रबंधन, व्यापक दृष्टि, नैतिक भाषा, विचारों की स्पष्टता, सांस्कृतिक रूप से समृद्व प्रतीकों का उपयोग, शिष्टाचार, भरपूर आत्मविश्वास और समाज के प्रत्येक वर्ग और हर समुदायों के लिए एक स्वस्थ समाज और समावेशी नेतृत्व स्थापित करने के साहस ने उनके करिश्मों में वृद्वि की(पारेख 2001: 15) गाँधी ने मजबूत राष्ट्रीय आंदोलन की शुरुआत की जो एक ओर सामाजिक-राजनीतिक विचारधारा में अदभुत संरचनात्मक परिवर्तन लाए, और दूसरी ओर ये राष्ट्रीय आंदोलन औपनिवेशिक शासन के खिलाफ सक्रिय साधन बन गए। महत्वपूर्ण राष्ट्रीयवादी आंदोलनों में असहयोग आंदोलन (1919-21), सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930-2) और भारत छोडो आंदोलन (1942) थे। असहयोग-आंदोलन (1919-21) पहला था जो तर्की में खलीफा के उखाड़ने के खिलाफ मुसलमानों के खिलाफत आंदोलन के साथ चल कर काफी लोकप्रिय रहा (चक्रवर्ती 2006: 9)

गाँधी का विचार था कि एक सरकार तभी अन्याय कर सकती है जब देश के लोग उस अन्याय को सहन करके उसमें सहयोग दें। गाँधी के शब्दों में सार्वधिक निरंकुश शासन का भी आस्तित्व सदैव नही रहता है, वह केवल शासितों की सहमति से जीवित रहता है, जिसे निरंकुश शासन बल पूर्वक प्राप्त करता है, लेकिन जैसे ही शोषित निरंकुश की ताकत से डरना बंद देता है, तानाशाह की सारी शक्ति चली जाती है। असहयोग का उपयोग हड़ताल, सामाजिक बहिष्कार या धरना के रूप में किया जा सकता है। यद्यपि यह एक हल्की तकनीक दिखती है, लेकिन बडे पैमाने पर किए जाने पर यह एक मजबूत विधि साबित हो सकती है। असहयोग किसी के खिलाफ नही बनाया गया था, लेकिन इसका मतलब भारतीय लोगों में दृढ़ता, निडरता, निर्भीकता को मजबूत करना था (पांडे 2012: 336) पारेख, (2001)। यह इस तथ्य पर प्रकाश डालती है कि गाँधी के असहयोग आंदोलन ने राजनीतिक स्वतंत्रता को एक सामूहिक राष्ट्रीय लक्ष्य बना दिया। इसने स्वैच्छिक संस्थानों के एक बडे निकाय, विस्तृत नागरिक समर्थन पाया और औपनिवेशिक राज्य की नैतिक पकड को कम कर दिया। हालांकि, यह अपनी पीठ के पीछे एक विकल्प की स्थापना करके औपनिवेशिक राज्य को पंगु बनाने के अपने मूल उद्देश्यों में विफल रहे थें।

गाँधी ने नागरिक अवज्ञा को सामाजिक-राजनीतिक क्षेत्र में एक वैद्य तरीका बनाने मे महत्वपूर्ण योगदान दिया। नागरिक प्रभुत्व अवज्ञा का मतलब है, असीमित पीड़ा सहन करने की क्षमता जो प्रतिद्वंद्वी को चुनौती देने के लिए उपयोग की जाती है। यह कानून हीनता की दशा स्थिति नही अपितू आत्मसंयम के साथ एक कानून पालन की भावना को धारण करती है पूर्ण सविनय अवज्ञा हिंसा रहित विद्रोह है। सविनय अवज्ञा एक पवित्र कर्त्तव्य बन जाता है, जब राज्य कानूनविहीन हो जाता है (फिशर 1951:140)। गाँधी जी ने सविनय अवज्ञा को अनैतिक वैधानिक प्रदर्शन के उल्लंघन के रूप में परिभाषित किया। गांधी ने सशस्त्रयुक्त विद्रोह की बजाय इसे पूर्णतया प्रभावकारी और रक्तपातरहित विकल्प माना। गांधी के अनुसार सविनय अवज्ञा के सविनय और अहिंसक होने की आवश्यकता थी। उनके अनुसार ''अवज्ञा'' कुछ भलीभांति वांछित सिद्वांतो पर आधारित हो। इसका पालन सावधानीपूर्वक होना चाहिए (पांडे 2012: 367) इसी तरह 8 अगस्त 1942 में जब भारत छोडो आंदोलन शुरू हुआ। तब लोग ब्रिटिश नीतियों और प्रशासनिक रवैये के विरूद्ध उत्तरोतर वेचैन और असहिष्णु हो रहे थे। गाँधी को डर था कि अगर इस प्रतिरोध को एक सुव्यवस्थित अंहिसक अभिव्यक्ति नहीं दी तो यह अनियत अव्यवस्था और हिंसा का रूप ले

लेगा। चूंकि उस समय अंग्रेज भारत की रक्षा सुनिश्चित करने के सक्षम नहीं थे और भारत को खुद अपनी रक्षा करने देने के इच्छुक करने भी नहीं थे गाँधी ने उनसे भारत छोड़ने का अहवान किया। गाँधी जी ने कहा कि हमारा झगडा ब्रिटिश लोगो से नही है, हमारी लड़ाई उनके औपनिवेशवाद से है। ब्रिटिशों सता वापस लेने का प्रस्ताव क्रोध के कारण नही बल्कि तत्कालीन निर्णायक मोड पर भारत को महत्वपूर्ण भूमिका निभाने में सक्षम बनाने के लिये आया (सिंह 2008: 20)

2.7 गाँधी: भारत में सीमान्तिकरण पर, समावेश और वहिष्करण पर दृष्टि

भारतीय समाज और भारतीय सामाजिक ढ़ाँचा, ऐतिहासिक रूप से लिंग, जातियता, विकलांगता, आदि पर आधारित अत्याचारों के कारण गैर-समतावादी बना रहा है। सीमांतिकरण की प्रक्रिया समाज के विभिन्न आयामों में उभरती है, और संचालित होती है। यह खंडन और वंचनाओं, असमानताओं तथा अनिश्चितता, पदानुक्रम और वर्चस्व की गतिशीलता पर आधारित है, (सिंघरॉय 2014:302)। भारतीय समाज में सीमांतिकरण की ऐतिहासिक जड़े है और सीमांतिकरण के विरूद्व युद्व गाँधीवादी की एक अधूरी परियोजना बन कर रह गई है। गाँधी की सामाजिक-सांस्कृतिक और सामाजिक-राजनीतिक रूप से वंचित लोगों के समावेश में संरचनात्मक भूमिका है। उनकी प्रमुख सामाजिक राजनीतिक पहल समाज के सीमांत वर्गो के जीवन में संरचनात्मक परिर्वतन करने में फलीभूत रही हो। उनका दृढ़ विश्वास था कि वास्तविक विकास तभी संभव है, जब समाज के सभी सीमांत वर्ग, सामाजिक सास्कृतिक राजनीतिक और आर्थिक रूप से भाग लें। जीवन भर गाँधी जी ने सब के लिये शिक्षा के संदर्भ में इस संरचनात्मक समावेश के लिए बहुत संघर्ष किया। नारी सशक्तिकरण, स्वास्थ्य, युवा-रोजगार, जातिगत भेदभाव का अंत और अल्पसंख्यक भागीदारी की वृद्धि करने का प्रयास किया।

भारतीय संदर्भ में वंशानुगत अभिजात्यवाद और अंग्रेजी शिक्षा की अप्रासंगिकता गांधी जी को अप्रिय थी। उन्होने स्वतंत्र भारत में एक नई समावेशी शिक्षा नीति तैयार की, जिसे ''नई तालीम'' और ''बुनियादी शिक्षा'' का नाम दिया। उनके अनुसार शिक्षा, ''शिक्षा से मेरा मतलब है कि बच्चे और मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा के श्रेष्ठ में से सर्वागीण विकास प्राप्त करना है। यहाँ ज्ञान प्राप्त करने के विशेष तरीके पर ध्यान केंद्रित था। प्रत्येक गाँव/ग्रामीण समुदाय के साथ-साथ देश के लिए भी एक सम्पूर्ण बुनियादी शिक्षा की आवश्यकता थी। गाँधी का मानना था कि शिक्षा की सबसे अच्छी संभावना है, ''कमाओ और सीखो'' जो लोगो मे आत्म सक्षमता (selfsufficent) और आत्मनिर्भता (self heliance) को प्रोत्साहित करती है। गाँधी के अनुसार इस प्रकार की व्यवसायिक शिक्षा छात्रों को कताई, बुनाई, बढ़इगीरी, मिटटी के बर्तन बनाना, पशुपालन जैसे उर्वरप्रजार और उत्पादन कौशल प्रदान करती है। उन्होने साक्षरता की तुलना में शिक्षा के स्वदेशी और सांस्कृतिक पहलुओं के माध्यम से शिक्षा पर विशेष जोर दिया। अगर हम ये नही करेगे तो बहुत बड़ी कीमत चुकायेगें (दयाल 2006: 259) (एंड्रयूज 2006:68) हालांकि, उनका यह मुद्दा सफल नही हुआ और शिक्षा के इस आदर्श को संचालित करने का उनका यह प्रयास एक सपना बनकर रह गया।

महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए गाँधी ने कहा, ''मेरी अपनी राय यह है कि, जैसे कि मौलिक रूप से पुरुष और महिलाएं एक है, उनकी समस्या भी एक होनी चाहिए। दोनों में एक ही आत्मा है। दोनों एक ही जीवन जीते है एक जैसी भावनायें हैं। एक दूसरे के पूरक

है, एक की सक्रिय मदद के बिना नही रह सकते, लेकिन किसी न किसी प्रकार पुरुष पिछले युगों से महिला पर हावी है, तथा इसलिए महिला ने एक हीन भावना विकसित हो गयी है। उसने पुरुष की दी शिक्षाओं की सच्चाई पर विश्वास करके ये मान लिया है कि वह पुरुष से नीची है। परन्तु, पुरुषों के बीच द्रष्टाओं ने उसकी समान प्रस्थिति को पहचाना है'' (कृपलानी 2007:155 में उद्वत) महिलाओं के भेदभाव के खिलाफ गाँधी ने निरंतर आवाज उठाई और ऐसा करने के पीछे उनका विचार महिलाओं को यह एहसास दिलाने का था कि वे केवल घरेलू कामों के लिए नहीं बनी बल्कि समाज के उच्चतर उद्देश्यों के लिये बनी है। (बक्षी 1987: 6) गाँधी के अनुसार पुरुष ने अपने खिलौने और अपनी वासना के वस्तु के रूप में उसका उपयोग किया है। वह आगे कहते है कि, ''महिलाओं को कमजोर सेक्स'' कहना एक परिवाद है; यह पुरुषों का महिलाओं पर अन्याय है। अगर ताकत से तात्पर्य पाशविक ताकत से है तो, निष्चय ही स्त्री-पुरुष से कम पाशविक है। यदि ताकत का मतलब नैतिक शक्ति है, तो महिला असीम रूप से पुरुष से श्रेष्ठ है (2006:260)। गाँधी जी ने जोर दिया कि महिलाओं के लिए शिक्षा उनके नैतिक विकास को सुनिश्चित करेगी एवं उन्हे पुरुषों की भाँति सार्वजनिक स्थान पर आधिपत्य करने में सक्षम बनाती है।

दक्षिण अफ्रीका में रहने के दौरान जाति और अस्पृश्यता गाँधी की प्रमुख चिंता नहीं थी, जब गाँधी भारत आए तो वह अक्सर जाति और अस्पृश्यता के दमनकारी और अक्रामक उपस्थिति से व्यथित हो जाते थे। जाति व्यवस्था हिन्दू समाज की रक्षक और संरक्षक थी, लेकिन ये स्वीकार किया गया कि तात्कालीन में यह व्यवस्था आडंबर और पाखंड, सुख सुविधा और विवादों जैसे- बुराइयों से भरी हुई थी (जार्डन 2012:105)। 1930 के दशक की शुरुआत से ही गांधी एक ओर कट्टरपंथी हिंदुओं और दूसरी ओर दलितों के स्वयंम्भू नेताओं से लंबे और कटु वाद विवाद में उलझे रहे। (हार्डिसन 2005:126) 1930 के गाँधी जी का मानना था कि जाति प्रथा भारतीय समाज की संरचना के लिए आधार थी लेकिन उन्होने जाति और अस्पृश्यता के आधार पर भेदभाव, वर्चस्व और अपमान की दृढ़ता से निंदा की। गाँधी हिन्दू जाति व्यवस्था के सामाजिक मनोविज्ञान से अपरिचित थे, जिसमे एक बहिश्करण रवैया और क्रूर शारीरिक मनोवैज्ञानिक हिंसा शामिल रहा है। (बिलग्रामी 2014:110)

गाँधी एक बहुत ही सजग विचारक थे। उनके विचार और कार्य में समाज के सभी वर्गो की समावेषिता के लिये जुनून था। उन्होने राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सभी मनुष्यों के लिए न्याय समानता, और निष्पक्षता मानवीय गरिमा पर जोर दिया।

बोध प्रश्न 2

1) गांधी की नयी तालीम की विचारधारा की जांच करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2.7 बी.आर. अम्बेडकर का राजनीतिक कैरियर

बी.आर. अम्बेडकर उन लोगो मेंसे एक थे, जिन्होने भारत में सीमान्त के लोगों के उत्थान में प्रमुख भुमिका निभाई। उनकी राजनीतिक गतिविधियों और संरचनात्मक समावेश के लिए उनकी लडाई से विशेष रूप से सामान्य जन और सीमांत वर्गो को लाभ मिलता है। ''(राजशेखरियन 1989; 4)। अपने पूरे जीवन में अम्बेडकर राजनीतिक कैरियर के विभिन्न चरणों से गुजरे। (मिश्रा (2004) ने कहा कि पहला चरण 1918 से आरंभ होकर 1928 तक था। इस अवधि के दौरान उन्होने अपने आप कों वकील के रूप में स्थापित किया, और अर्थशास्त्र में उच्चतम डिग्री प्राप्त की। महाड में उन्होने सार्वजनिक तालाब से दलितो के पीने के पानी के अधिकार का हासिल करने के लिए सत्याग्रह संघर्ष का नेतृत्व किया। 1929 से 1936 में दूसरी अवधि शुरू हुई, इस अवधि में उन्होने दलितों के लिए अलग निर्वाचन मंडल हासिल करने के लिए संवैधानिक लडाई शुरू की। उन्होने कहा कि जो लोग सामाजिक रूप से पृथक थे, उनके पास राजनीतिक मंच भी अलग होना चाहिए। तीसरे चरण में 1937 से 1946 तक स्वतंत्र श्रमिक पार्टी (Independent Labour Party) का गठन किया। वह बम्बई विधानमंडल के विपक्ष के नेता थे और बाद में 1942 में वायसराय की कार्यकारी परिषद में लेबर मैम्बर बन गए।

चौथी अवधि में उन्होंने भारतीय संविधान की प्रारूपण सभा के अध्यक्ष के रूप में प्रभावी रूप से काम किया तथा, उन्हें 'आधुनिक मनु' के रूप में जाना गया उसके बाद स्वतंत्र भारत की प्रथम कैबिनेट के कानून एवं न्याय मंत्री बने और फिर उन्होने संसद में विपक्षी नेता के रूप में कार्य किया (2004:21)। अपने राजनीतिक कैरियर और स्वतंत्रता अंदोलन में बी. आर. अम्बेडकर और महात्मा गाँधी निचली जातियों के अधिकारों को हासिल करने के सर्वोतम प्रभावी तरीकों पर असहमत रहे थे। गाँधी ने शोषित वर्गो को हिन्दुत्व के घेरे में रख कर, हिन्दुत्व को भीतरी रूप से सुधारने और शोषित वर्ग के लिए विशेष अधिकारों को पसंद किया। इसके विपरीत अम्बेड़कर नीची जातियों के लिये अधिकार और प्रतिधित्व सुनिश्चित करना चाहते थे, (फेनकिस, 2006:39)

2.9 बी.आर. अम्बेडकर सामाजिक/राजनीतिक दर्शन

बी.आर. अम्बेडकर आधुनिक भारत के इतिहास के उन विभूतियों में से एक है, जिनके बारे में लोग बहुत कम जानते है। एक विद्वान के रूप में अम्बेडकर को बहुत कम लागो ने जाना (मुखर्जी 2009: 346) उन्होने 1950 में भारत के उदार संविधान बनाने में एक विधायक और मसौदा समिति के अध्यक्ष के रूप महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होने प्रतिवादी बौद्व धर्म के एक संप्रदाय की स्थापना की, जिसे ''नवीना'' कहा जाता है। जिसका अर्थ है, ''नया रास्ता'' या ''नया वाहन''। उन्होने कोलंबिया और लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। वह जितने बड़े राजनीतिज्ञ थे उतने ही विद्वान थे। बी.आर. अम्बेडकर ने कई किताबे लिखी जो समाज के अंतरिम मुख्य मुददों को संबोधित करती है।

बी.आर. अम्बेडकर ने जाति व्यवस्था की विद्वतापूर्ण व्याख्या की है। उन्होने ब्रिटिश भारत में मुद्रा और वित्त पर पाकिस्तान और भारत के विभाजन, बौद्व धर्म, अस्पृश्यता, तुलनात्मक संविधानवाद, अल्पसंख्यक और संघवाद पर लिखा तथा संस्कृति और राजनीति, मानव विज्ञान और इतिहास, कानून जैसे अन्य राजनीति मानव विज्ञान और इतिहास, के मुददों जैसे अन्य विषयों पर अत्यंत जोर दिया तथा न्यायशास्त्र, धर्म और समाज के बारे में लिखा। उनकी अभिरूचिया और उनके ज्ञान की गहराई वास्तव में मजबूत थी। कई बार वों गाँधी

के विचार से असहमत हुये थे कि 20वीं शताब्दी के दौरान भारत में सामाजिक विषमताओं को कैसे दूर किया जाए और वर्तमान आंदोलन में सामाजिक न्याय कैसे सुनिश्चित किया जाए।

बी.आर. अम्बेडकर के जीवन में मुख्य चिंता गलत आदर्श रूप से प्रस्तुत सामाजिक संबंधो की चुनौती का सामना करना था, जिसने पूरे मानव अस्तित्व को खतरे में डाल दिया और एक नैतिक और न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की नीवं हिला दी। उनके जीवन की अधूरी परियोजना लोगों में समानता और न्याय के लिये जोश भरने के लिए थी। अटकलों के बजाय वह दृढ़ता से व्यावहारिक विद्वता में विश्वास रखते थे और उनका सामाजिक राजनैतिक जीवन आनिवार्य रूप से भारतीय समाज से व्याप्त स्थितियों और घटनाओं के तहत विकास और उद विकास कार्य के प्रति समर्पित था (मिश्रा 2004:7)। उनका ज्ञान काफी हद तक परंपरावाद, धार्मिक रूढ़िवाद, ऐतिहासिक रूप से वर्चस्व और स्वनिर्मित अंध ाविश्वासों की जंजीरो को सफलतापूर्वक तोड़ता है। उन्होने कभी भी किसी सामाजिक-सांस्कृतिक वास्तविकताओं के विषय में एक सीमित या पृथक तरीके से नहीं बल्कि संरचनात्मक और सामुहिक रूप से सोचा था। बी.आर. अम्बेडकर के बौद्विक और सामाजिक राजनीतिक संघर्ष ने उर्वर आधार तैयार किए, जो सीमान्त समूहों का उत्थान करते हैं, तथा तत्कालीन संदर्भ में सामाजिक रूप से सामावेषी मंच को विकसित करते है उनका मानना था कि जातिवाद जैसा- संरचनात्मक भेदभाव का ऐतिहासिक रूप शासन के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक तंत्र को स्वयं में शामिल रखते है। संघवाद पर बी.आर.अम्बेडकर का परिप्रेक्षय अन्य विचारको की तुलना में आलोचनात्मक था। उन्होने विश्व के अन्य स्थानों के साथ भारत की संघीय व्यवस्था को समानतताओं और भिन्नताओं को समझने के लिये तुलनात्मक विधि को उपयुक्त माना है (कुमार, 2010, 213)।

बी.आर. अम्बेडकर का राजनीतिक दर्शन पूरी तरह से काल्पनिक और नैतिक विचारों पर आधारित नही है, बल्कि यह वास्तविक मानव समस्याओं और मुददों से संबंधित है। उनका मानना था कि इंसान हमेशा बदल रहा है, आगे वह मनुष्य वही बनता है, आगे वे कहते है कि बढ़ रहा ही जो उसका मन उसे बनाता है। दूसरे शब्दो में हर आदमी का अपना दिमाग होता है, और उसे कार्य करने और प्रतिक्रिया करने की अनुमति होनी चाहिए। इसे पूरी तरह से विकसित होने के अवसर मिलने चाहिये ताकि प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी अपमान और अधीनता के अपना व्यक्तित्व विकसित कर सके (राजषेखषह और जयराज, 199: 361)। टिमोथी (2006) बताते है कि, बी.आर. अम्बेडकर का सबसे प्रसिद्व लेखन उदाहरण के लिए ''अननिहिलेषन ऑफ कास्ट (1936)'', ''द बुद्वा एंड द फ्यूचर ऑफ हिज रिलिजन (1950)'' और द बुद्व एंड हिज धम्मा'' (1957)'' सामाजिक यथार्थ की चर्चा का रूख मोड़ते है। बी. आर. अम्बेडकर ने धर्म की प्रकृति और राजनीति तथा शक्ति के साथ धर्म के संबंध का एक सुसंगत व्यौरा या लेखा विकसित करने का प्रयास किया। ''अनिहिलेषन ऑफ कास्ट में उनका तर्क है कि हिंदुत्व नियमों का धर्म है; अनुष्ठानों के ऐसे नियमों का संग्रह जो पदानुक्रम और अस्पृश्यता की जातिवादी विचारधारा पर आधारित है। डा.बी.आर.अम्बेडकर मानते है कि जातिः हिंदुत्व का केन्द्रीय सत्य है और अस्पृश्यता जाति की परिभाषित विशेषता है। उनके अनुसार जाति में सुधार नहीं किया जा सकता क्योंकि अस्पृश्यता जाति का एक जन्मजात लक्षण है। (पृष्ठ 134)। अम्बेडकर का मानना है कि सामाजिक और आर्थिक संचालन या संगठन (उत्पादन और वितरण) की व्यवस्था के रूप में जाति निश्चित प्रथागत नियमों और मानको पर आधारित है जो अनूठे और विशिष्ट है। (थोरट 2006:287) उनकी जीवन भर की चिंता सभी संभावित और आवश्यक साधनों द्वारा सामाजिक तौर परनिर्मित अन्याय के खिलाफ लडना और एक समतावादी समाज की स्थापना थी।

2.10 बी.आर. अम्बेडकर के हाशिए और सामाजिक समावेश पर विचार

सीमांतीकरण एक मानव की बनायी और सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से निर्मित प्रक्रिया है। यह वर्ग, लिंग जाति और नस्ल की संगठित और संस्थागत संरचना के माध्यम से पदानुक्रम और वर्चस्व की असमान संरचना के द्वारा वैद्यता प्राप्त करता है और इसका निरंतर पुननिर्माण होता है। सीमातीकरण का प्रभुत्व समूह के अधिपत्य को बनाए रखने में, शोषण और असामानता, सामाजिक पृथक्करण और असमानता को वैद्यता प्रदान करने के लिये समाज के मजबूत संस्थागत और मानक व्यवस्थाओं के माध्यम से पुनर्निर्माण एवं पुर्नुत्थान होता है (सिंघरॉय-2014:59) बी.आर. अम्बेडकर के पास एक अदभुत और व्यवहारिक दिमाग और नैदानिक क्षमता (Dignostic ability) थी, जिसने उन्हे हमेशा आम लोगों के लिए समावेशी करण की खोज करने की अदभुत ताकत प्रदान की। उनके प्रमुख सामाजिक और राजनीतिक विचारों ने सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याओं को संबोधित किया है, जैसे कि जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता, लैंगिक भेदभाव, और सीमांत लोगो की मुक्ति और नई संभावना की तलाश की (राजषेखराह और जयराज 199-358) वह एक गतिशील राजनीतिक सिद्वांतकार थे, जिन्होने अपना पूरा जीवन सीमांतीकरण के विभिन्न रूपो के ध्वस्त करने के लिए समर्पित कर दिया था। उनकी समावेषिता भारत में सीमांत समूहो के लिए सार्वजनिक और निजी उत्थान, मानवीय गरिमा, ईमानदारी, समानता और स्वतंत्रता अधिकारों और नागरिक सुविधाओं को पुनर्स्थापित करती है।

सीमांतीकरण के बारे मे बी.आर. अम्बेडकर की समझ थी कि सीमांतिकरण की स्थिति तब उत्पन्न होती है जब कोई व्यक्ति या समुदाय किसी भी सामाजिक-सांस्कृतिक व निर्मित जातिगत रंग, और लिंग की तरह की हीन पहचान के कारण सामाजिक संबंध और सामाजिक संपर्क से वंचित रह जाता है या कट जाता है। सीमांतकरण भारतीय समाज में सार्वजनिक और निजी जीवन मे समुदायों या व्यक्ति के गायब होने की एक अवस्था है। भारतीय समाज में सीमांतिकरण और भेदभाव की जड़ में जाति है। अम्बेडकर कृत व्याख्या में सीमांतीकरण किसी भी रूप में एक संस्थागत संरचना में अंतर्निहित है। उन्होने भारतीय समाज की भेदभावपूर्ण संस्थागत संरचनाओं के उन्मूलन द्वारा पुनर्निमाण की कोशिश की। उन्होंने भेदभावपूर्ण सामाजिक संरचना को खत्म करने के लिए संरचनात्मक और संस्थागत क्रियाओं पर भी प्रकाश डाला। उन्होने उन संरचनात्मक और संस्थागत कार्यों पर प्रकाश डाला जो दलितों के जीवन का परिसीमन करते है। उन्होने दलितों के सांस्कृतिक उत्पीडन को भी प्रमुखता दी। जिसका अर्थ है कि किस प्रकार हमारे समाज के प्रभुत्व वर्ग सीमांत समूहों की रूढ़िबद्व करते है। (वर्मा 1999:2809)। थोरेट (2006) ने आर्थिक, नागरिक और सांस्कृतिक आधिकारों से वंचित रहने की मनाही के कारण ऐतिहासिक और संस्थागत रूप से सभी भारतीय समाज के अस्पृश्य जातियों के प्रति असमानताओं और वचन के विरूद्व अम्बेड़कर के समावेशी मुद्दे पर प्रकाश डाला। अस्पृश्यता और जातिगत भेदभाव जारी न रहे, यह सुनिश्चित करने के लिए तीन सुरक्षा उपायों का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है,

(1) वर्तमान भेदभाव के खिलाफ सुरक्षा उपायों के समान अधिकारों के प्रावधानों में शामिल करना। (2) कानूनी अधिकारों के उल्लंघन के खिलाफ निवारक कानूनी उपायों के रूप में कानूनी सुरक्षा। और, (3) विधायिक, कार्यपालिका, सार्वजनिक सेवाओं, शिक्षा और अन्य सार्वजनिक क्षेत्रों में वंचित अस्पृश्य समूह की भागीदारी हो, यह सुनिश्चित करने के लिये सक्रिय कदम एवं (आरक्षण नीति के रूप में)। ये सुरक्षा उपाय सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों

में भेदभाव के खिलाफ कानूनों के उल्लंघन के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करते हैं तथा समान भागीदारी के लिए स्थान प्रदान करते है। अम्बेडकर के विचार में, समान अधिकार जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता की संस्था के असमान प्रथागत कानूनी ढ़ाचे को उलट कर कानूनी ढ़ांचा प्रदान करेगा (पृष्ठ 300)

अंबेड़कर की 'सामाजिक न्याय' की अवधारणा सीमांत वर्गों के लोगों के लिये सम्पूर्ण समावेश के उनके विचार का अच्छा उदाहरण है। उनके अनुसार सामाजिक न्याय सभी मनुष्यों की उनके अनुसार सामाजिक न्याय सभी मनुष्यों की स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के लिए होता है। उनका ''सामाजिक न्याय का विचार प्रगतिशील था क्योकि यह बौद्विक'' और मानवतावादी भावनाओं का समर्थन करता था और किसी भी प्रकार के पाखंड, अन्याय, और शोषण का समर्थन नहीं करता था। अम्बेडकर अपने जीवन के सभी आयामों में आदमी और औरत एवं मनुष्यों के बीच सही संबंधों के आधार पर एक प्रणाली स्थापित करना चाहते थे। अम्बेडकर ऐसी सामाजिक व्यवस्था में विश्वास रखते थे जिसमें मनुष्य की स्थिति, उसकी योग्यता और उपलब्धियों पर आधारित हो तथा जहाँ कोई भी व्यक्ति अपने जन्म के कारण या अछूत नहीं हो। डॉ.बी.आर.अम्बेडकर हिंसा में विश्वास नहीं करते थे और वे जन-मानस संचार को न्याय और स्वतंत्रता के लिए एक सामाजिक परिवर्तनों के लिए एक विशाल शक्तिशाली उपकरण मानते थे। अम्बेडकर भारतीय समाज के सीमांत वर्गो के समावेशी विकास के बारे में बहुत गंभीर रूप से चिंतित थे। (राघवेंद्र 2016:28)

डॉ.बी.आर.अम्बेडकर का दृड़ विश्वास था कि शिक्षा केवल बच्चे के व्यक्तित्व के विकास और जीविकोपार्जन का साधन ही नहीं है। अपितू उनका मानना था कि शिक्षा समाज में संरचनात्मक परिवर्तनों के लिए भी सबसे प्रमुख जरिया है। महिला सशक्तीकरण पर अम्बेडकर के विचार महिलाओं के जीवन के हर आयाम में समावेश के महान स्रोत हैं। उन्होने महिलाओं को समाज में उत्पीड़न, भेदभाव और सीमांतीकरण का शिकार होते देखा उनके योगदान को ध्यान में रखते हुए, अमृत्य सेन ने कहा, कि ''अम्बेडकर अर्थशास्त्र के मेरे पिता समान है'' वह वंचितों के सच्चे ख्यातिप्राप्त चैंपियन हैं।, जो कुछ उन्होने आज भी हासिल किया है, उससे अधिक के वे हकदार हैं। हालांकि अपने देश में वो बहुत विरोधाभासी सी व्यक्तित्व रहे, जो वास्तविकता नही थी। अर्थशास्त्र के क्षेत्र में उनका योगदान शानदार है और सदा याद किया जायेगा।

बोध प्रश्न 3

1) अम्बेडकर के सामाजिक-राजनीतिक दर्शन पर चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

2) सीमांतकरण और सामाजिक समावेश पर गांधी और अम्बेडकर के विचारों को को विस्तार से समझाये।

.....

.....

.....

2.11 सारांश

इस इकाई में हमने गांधी और अम्बेडकर के जीवन चित्रण और उनके अहिंसक संघर्ष, सामाजिक समानता, न्याय और वंचितों के सशक्तिकरण के बारे में उनके के विचारों और दृष्टि पर जोरदार चर्चा की। गांधी और अम्बेडकर दोनों प्रजातांत्रिक सिद्वान्तों, धर्म निरपेक्ष चरित्र (प्रकृति) सांस्कृतिक और धार्मिक सोहाद्र के माध्यम से भारतीय समाज में समतावादी समाज की रचना में विश्वास रखते थे। हमने ये भी जांचा किस प्रकार महात्मा गाँधी ने भारत की एक समानता, धर्मनिरपेक्षता, बहुलवाद, हाशिए के वर्गो के सशक्तिकरण पर आधारित राष्ट्र के रूप में कल्पना की।

भारतीय संविधान के निर्माण में अम्बेडकर के योगदान के अतिरिक्त उनकी की बौद्धिक कल्पना एवं योगदान की विशेषकर वंचित वर्ग और दलितों के संरचनात्मक सीमांतकरण के विरूद्व संघर्ष और समाज कल्याण के संदर्भ में विस्तार से व्याख्या की।

2.12 संदर्भ

Ambedkar, B.R. (1916) (1936) 'Caste in India: Their Mechanism, Genesis and Development', in B.R. Ambedkar, *Annihilation of Caste*. Jullandher: Bheema Patrika Publications.

Baisantry K.D (1991). Ambedkar the total Revolution, Segment, New Delhi.

Bain, Matthew (2009). Gandhi and Secularism Gandhi and Status of Women, Criterion, New Delhi.

Bakshi R. S (1987). https://gandhifoundation.org/2009/05/27/gandhi and-secularism.

Bose K. N (1953). My days with Gandhi. Calcutta, Nishana

Bilgrami, Akeel (2014). Secularism, Identity, and Enchantment.Permanent Black, New Delhi.

Chakrabarty Bidyut (2007). Mahatma Gandhi: A Historical Biography, Roli, New Delhi.

Chakrabarty, Bidyut (2006). Social and Political Thought of M Gandhi. Routledge, New York.

Dayal, Parmeshwari (2006). Gandhian Theory of Social Reconstruction, New Delhi, Atlantic.

Fischer, Louis (1951). Mahatma Gandhi-His Life & Times. Vidya Bhavan,http://www.bhavans.info.

Fenkins, D. Laura (2006). B R Ambedkar and the Buddhist Dalits. In Encyclopedia of India, edited by Stanley Wolpert, New York, Thomson.

Fitzgerald, Timothy (2006). Ambedkar, Buddhism and the Concept of Religion. In Dalits in modern India: vision and values. Edited by S.M. Michael. (2nd ed.). New Delhi, Sage. New Delhi, Pan Macmillan.

Gandhi, M. K. (1927). The Story of my Experiment with Truth. Ahmedabad, Navayivan.

Hardiman, David (2003). Gandhi in his Time and Ours. New Delhi, Permanent.

Jordens F.T. J (2012). Gandhi's Religion a homespun shawl, Oxford, University Press.

Kumar Vijay (2007). Gandhi: The man, his life & vision, Regal, New Delhi.

Kumar, Ray (2010). Encyclopedia of B.R Ambedkar, Vol.1, New Delhi, Commonwealth.

Keer Dhananjay (1981). Dr. Ambedkar Life & Mission. Popular, Bombay.

Kumar, Ravindra (2008). Gandhian Thought New World, New Dimensions. New Delhi, Kalpaz.

Lelyveld, Joseph (2011). Great Soul: Mahatma Gandhi and his Struggle with India. Alfred, New York

Mukherjee, P. Arun (2009). B R Ambedkar, J Dewey & the Meaning of Democracy *New Literary History*, 40, (2), pp. (345-370).

Mishra N. S (2004). Facets of Dr. Ambedkar, IIPA, New Delhi.

Mukherji, Gangeya (2016). Gandhi and Tagore Politics, Truth and Conscience. New York, Routledge.

Misra P.R and K.D. Gangrade (2005). Gandhian Alternative. Vol.1, New Delhi, Concept.

Parekh, Bhikhu (2001). Gandhi: A Very Short Introduction. Oxford, University Press.

Pandey, Rekha (2012). Encyclopedia of Great Indian Political Thinkers. New Delhi, Alfa.

Parekh, Bhikhu (1989). Gandhi's political philosophy: a critical examination. Macmillan, London.

Ray N.B (2008). Gandhigiri Satyagrahi after Hundred years, Kaveri, New Delhi.

Rajasekharian M.A (1989). B.R. Ambedkar: The Quest for Social Justice, Uppal, New Delhi.

Rajasekhariah and Hemalata Jayaraj (1991). Political Philosophy of Dr. B. R. Ambedkar. *The Indian Journal of Political Science.* Vol. 52, No. 3. pp. 357-375.

Raghavendra, H. R (2016). Dr B.R. Ambedkar's Ideas on Social Justice in Indian Society. *Sage*, 8(1) 24–29.

Rao, Ramakrishna (2014). Satyagraha: Gandhi's Yoga of Nonviolence. Journal of Gandhian Studies. Vol.3, No.1, (pp.79-118).

Rao, Narayan, A. Somassekhar and K. Audiseshaiah (2013). B. R. Ambedkar his Relevance Today. New Delhi, Gyan.

Sharma K.K (2011). Nationalism and Gandhian Mass Movement. Jaipur, Aadi.

Singharoy Debal K (2014). Towards Knowledge Society: New identities in Emerging India. Cambridge, New Delhi.

Thorat, Sukhadeo (2006). Ambedkar's Interpretation of the Caste System, its Economic Consequences and Suggested Remedies. In Dalits in modern India: vision and values. Edited by S.M. Michael. (2nd ed.). New Delhi, Sage.

Trivedi, Tanuja (2012). B.R Ambedkar More than a Dalit Voice. New Delhi, Jnanada.

Varma, P. Vishwanath (1959). The political Philosophy of Mahatma Gandhi and Sarvodaya. Agra, Lakshmi Narain Agarwal.

Verma, Vidhu (1999). Colonialism and Liberation: Ambedkar's Quest for Distributive Justice. *EPW*, 34 (39), pp. 2804-2810.

Zene, Cosimo (2013). The political philosophies of Antonio Gramsci and Ambedkar: subalterns and Dalits. (eds), New York, Rutledge.

कुछ उपयोगी पुस्तकें

Keer Dhananjay. (1981). *Dr. Ambedkar Life & Mission*. Bombay: Popular Prakashan,

Mishra N. S (2004). *Facets of Dr. Ambedkar*. New Delhi: IIPA,.

Parekh, Bhikhu. (2001). *Gandhi: A Very Short Introduction*. New Delhi: Oxford University Press.

Thorat, S and N. Kumar (2008). *B. R. Ambedkar Perspective on Social Exclusion and Inclusive Policies.* New Delhi, Oxford University Press.

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 3 भारत की विचारधारात्मक छवि*

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 विचारधारात्मक छवि

3.3 भारत की विचारधारात्मक छवि

3.3.1 बहुलवाद

3.3.2 राष्ट्रवाद

3.4 भारतीय सभ्यता

3.5 भारत में आधुनिकीकरण और सामाजिक परिवर्तन

3.5.1 आधुनिकीकरण और परम्परा की निरन्तरता

3.6 सारांश

3.7 संदर्भ

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपः

- विचारधारा की अवधारणा को परिभाषित कर सकेंगे
- समाज की विचारधारात्मक छवि का वर्णन कर सकेंगे
- समाज की विचारधारात्मक छवि की प्रकृति पर विचार विमर्श कर सकेंगे
- राष्ट्रवाद, बहुलवाद और भारतीय सभ्यता की अवधारणाओं की रूप-रेखा प्रस्तुत कर सकेंगे
- भारत में आधुनिकीकरण और परिवर्तन पर विचार विमर्श कर सकेंगे
- आधुनिकीकरण के साथ-साथ उन मुख्य कारको, जो परम्परा की निरन्तरता के लिए जिम्मेदार है, को भी पहचान सकेंगे

3.1 प्रस्तावना

''सारे जहाँ से अच्छा हिन्दुस्तान हमारा'' भारतीय समाज की एक बहुत की काव्यात्मक और वर्णनात्मक छवि है जिसको बहुत बडे कवि आलिम इकबाल ने लिखा है। जैसा कि कवि ने लिखा है, समय के साथ साथ भारतीय समाज विभिन्न सामाजिक विविधता और सांस्कृतिक विचित्रता, सामाजिक, प्रजातीय, जातीय, सामुदायिक और धार्मिक बहुलवाद, राष्ट्रीय आंदोलन की परम्परा, पार्टी नेतृत्व की विषम शैली और वैचारिक दृष्टिकोण के टकराव के बाद भी बरकरार रहा है। उत्तर उपनिवेशवाद में भारत के बदलते सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक वातावरण और प्राचीन समय से लेकर मुस्लिमों के राज की

* यह इकाई रबीन्द्र कुमार मोहंती द्वारा लिखित है।

पुर्नगणना तक की वर्णनात्मक छवि प्रस्तुत करने के लिए कई संस्करणों की आवश्यकता है। इसलिए भारत का इसके संरचनात्मक और सांस्कृतिक क्षेत्र में समग्र चित्रण वास्तव में कठिन है। यह इकाई भारतीय समाज की विचारधारात्मक छवि का वर्णन प्रस्तुत करने का प्रयास करेगी। सोच, विचार और वर्णन, जो बहुलवादी संस्कृति और अपने स्वजातीय प्रेम से संबंधित है और एक महान सभ्यता जो वृहत और लघु परम्पराओं की जटिल संरचना है, इन सब को यहां विस्तार से संबोधित किया गया है। यह भी तर्क दिया गया है कि भारत में आधुनिकीकरण के प्रतिरूप विचारधाराओं के चुनाव के साथ यह अस्तित्व में किस तरह से एक जैसे या भिन्न हैं। यहाँ इस बात को देखना भी जरूरी महसूस करता है कि कैसे भारत में आधुनिक मूल्यों को परम्परागत मानदंडों में आत्मसात किया जा रहा है और एक समग्र मानक को विकसित किया गया है जो सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को निरंतरता प्रदान करता है।

3.2 विचारधारात्मक छवि

समाजशास्त्र के अन्तर्गत, व्यापक अर्थ में विचारधारा से तात्पर्य एक व्यक्ति या एक समाज के विश्वदर्शन को समझना है जो वह अपनी संस्कृति के कुल योग, मुल्यों, विश्वासों, मान्यताओं, व्यवहारिक बुद्वि और आकांक्षाओं के प्रति रखता है। विचारधारा संकल्पनाओं और विचारों की एक व्यवस्था है जो दुनिया का अर्थ तब समझाने का कार्य करती है जब उसमें व्यक्त सामाजिक हितों को समझना कठिन होता है और यह अपनी संपूर्णता और सापेक्ष आन्तरिक अनुरूपता के द्वारा एक बंद व्यवस्था बनाना चाहती है और विरोंधाभासी या असंगत अनुभव के समक्ष भी अपना अस्तित्व बनाये रखती है। वास्तव में, विचारधारा समाज के अंदर, समूहों के अदंर और दूसरे व्यक्तियों के संबंध में एक पहचान प्रदान करती है। विचारधारात्मक छवि से तात्पर्य उस स्पष्ट चित्रण और वर्णन से है जो बताता है कि समाज अपने अपने में अनूठा है, कैसे विचार क्रियाए, लोगों की अतः क्रियाएं समय और सांस्कृतिक स्थान के आर पार आकार ले रही है और व्यापक रूप में संक्रमण और रूपांतरण की समग्र यात्रा में समाज के साथ क्या होता है।

3.3 भारत की विचारधारात्मक छवि

पिछले कुछ वर्षो में भारत पर जो राष्ट्रीय और बहुत हद तक, वैश्विक मतैक्यता (consensus) बनी है वह स्वंय में बहुलवादी संस्कृति और अपने राष्ट्रवादी प्रेम और वृहत और लघु परम्पराओंकी जटिल संरचना, से निर्मित एक महान सभ्यता की बनी है। स्वतंत्र भारत अपने लिखित संविधान द्वारा विश्व में सबसे बड़े लोकतंत्र की सफल कथा का नेतृत्व करता है। सफलता की यह गाथा विभिन्न धर्मो के एक देश में एक धर्मनिरपेक्ष संविधान, एक स्वतंत्र प्रेस, एक निष्पक्ष न्यायपालिका और एक सफल बौद्विक समुदाय के संदर्भों से अलंकृत है। इनमें से बहुत से दावे भारत की आर्थिक और राजनीतिक वास्तविकता के कुछ पहलुओं की भिन्न मात्रा में ईमानदार पकड़ पर आधारित है परन्तु समस्या तब उत्पन्न होती है जब ग्रहण की गयी छवि को उस स्तर तक बढ़ा चढ़ा दिया जाता है जहां पर भारत की गौरवान्वित तस्वीर उभरती है और सैद्धान्तिकरण और विचार के अनुष्ठान गीत की ओर अग्रसर करता है जिसे भारतीय विचारधारा कहते हैं। 'भारत के विचार' को बढ़ा चढ़ा कर प्रस्तुत करने की यह विचारधारा, विविध रंगों में, भारतीय बौद्विकों के विशाल बहुसंख्यकों द्वारा भारत के अंदर और जो विदेशों में बस गये है, के द्वारा सांझा की जाती है। विचारधारा का तात्पर्य विचारों की उस व्यवस्था से है जो विश्व का वर्णन करने ओर उसे बदलने, दोनों बातों की आकांक्षा

रखती है। भारतीय विद्वान भारत की सामजिक बुराइयों की जांच में कठोर है भारत की सामाजिक बुराइयॉ हैः भुखमरी, गरीबी, अशिक्षा, प्रत्येक तरह की असमानता, लैगिक भेदभाव, आर्थिक शोषण, भ्रष्टाचार, वाणिज्यीकरण, कट्टरपन, गंदी बस्तियों का विस्तार, पर्यावरण की लूट-क्रोध और घृणा ने वास्तव में विस्तृत रूप में सभी बुराईयों को समेट रखा है। पैरी एंडरसन की पुस्तक ''दा इण्डियन आइडियॉलाजी'' (भारतीय विचारधारा) ने आधुनिक भारतीय इतिहास के तीन चरणो-गांधी जी के नेतृत्व में स्वतंत्रता के लिए संघर्ष, 1947 का विभाजन और नेहरू जी के नेतृत्व में भारतीय गणतंत्र का निर्माण व भारतीय राष्ट्रवाद को जोडा है।

भारत को अक्सर सांस्कृतिक बहुलता और विविधता की एक भूमि के रूप में दर्शाया जाता है जहॉ दो विपरीत वैश्विक नजरिये पारम्परिक और निरंतर तथा औपचारिक और आधिकारिक (अंग्रेजों से विरासत में मिला) पनपे है। यह दोनों दृष्टिकोण आज असुविधाजनक रूप से एक साथ है, प्रायः विरूद्व/प्रतिरूद्व उद्देश्यों पर और समकालीन आधिकारिक वैश्विक दृष्टिकोण से टकरा रहें है। इस तरह के विवाद के बीच में भारतीय विद्वान कार्यक्षेत्र अनुभव के द्वारा भारत के विभिन्न विश्वासों धारणाओं, बहुल समुदायो और सांस्कृतिक विविधताओं के संदर्भ में सांस्कृतिक परिदृश्य की अधिक नई श्रेणी का पवित्र मूल्यों और श्रेणियों का अन्तर्राष्ट्रीय नियमों की तुलना में पता लगाने के लिए वास्तविक जमीनी स्तर की परिस्थितियों को जॉच करते हैं।

3.3.1 बहुलवाद

बहुलवाद इस तथ्य को स्वीकार करना कि विभिन्न शक्ति समूहों को विचारों के स्वतन्त्र और खुले बाजार में मौजूद रहना चाहिए जिससे समाज को संचालित करने के लिए नीतियों और नियमों को पैदा किया जा सके। यह समाज का वह स्वरूप है जिसमें अल्पसंख्यक बिना किसी प्रतिबंध के अपनी स्वतंत्र सांस्कृतिक परम्पराओं को बनाए रखते है। सरल शब्दों में यह भी कह सकते है कि जैसे विभिन्न विश्वासों के लोग अपनी मान्यताओं को भंग किए बिना एक ही समाज में शक्तिपूर्वक रहते है।

पुरातन समय से, भारत सांस्कृतिक बहुलवाद की अनेक भाषाओं, धर्मो, जनजातियों, प्रजातियों और जातियों व उप-जातियों का घर है। उनमें से धार्मिक बहुलवाद का भारत में एक अलग अस्तित्वगत विद्येय (अवस्था) हैं। धार्मिक बहुलवाद एक विश्वास है जिसमें कोई विभिन्न धर्मों के बीच के धार्मिक विरोधो और समान धर्म के भीतरी संघर्ष पर विजय पा सकता है। क्योकि धार्मिक बहुलवाद ज्यादातर धार्मिक परम्पराओं के अशाब्दिक दृष्टिकोण पर आधारित होता है जो विभिन्न परम्पराओं के बीच अल्पसंख्यक मुददों के बजाय दल सिद्वांतों के आधार पर सम्मान के पालन की अनुमति देता है। यह एक ऐसी प्रकृति है जो सारहीन मतभेदों पर ध्यान कंन्द्रित करने को अस्वीकार करती है और इसके बजाय उन विश्वासों में सम्मान देती है जो प्रतिबंधों और सीमाओं के भीतर अच्छी तरह से पाये जाते है।

धार्मिक बहुलवाद का अस्तित्व धर्म की स्वतंत्रता पर निर्भर करता है और यह तब है जब एक निश्चित क्षेत्र के विभिन्न धर्म पूजा और सार्वजनिक अभिव्यक्ति का समान अधिकार रखते है। धर्म की स्वतन्त्रता तब कमजोर होती है जब एक धर्म को अधिकार और विशेषाधिकार दिये जाते है पर दूसरो को उनसे वंचित कर दिया जाता है। धर्म की स्वतंत्रता साम्यवादी देशों में नही होती है वहॉ राज्य धार्मिक विश्वासों की सार्वजनिक अभिव्यक्ति को प्रतिबंधित या निषेध कर देता है। व्यक्तिगत धर्म को सताया भी जाता है। कुछ मध्य पूर्वी देशों में, जहॉ

वे एक निश्चित धर्म का पालन करते है, बहुलवाद को अगर प्रत्यक्ष रूप से नियंत्रित नहीं कर पाते है तो प्रतिबंधित तो कर ही देते है।

पश्चिमी धारणा में धर्म निरपेक्षता राज्य को धर्म से पृथक करने का प्रचलन है पश्चिमी देशों में धर्मनिरपेक्षता राज्य को धर्म से अलग करने, लोगो के धार्मिक मुददों में राज्य की दखल को सीमित करने की एक कार्यप्रणाली है।

भारत धर्मनिरपेक्षता का अपना स्वयं का संस्तरण रखता है। बहुलवादी समाज और लोगो के विश्वासों को ध्यान में रखते हुए, गांधी जी, स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान धर्मनिरपेक्षता के अपने संस्तरण के साथ निर्गत हुए जिसका अर्थ था सभी धर्मो की समानता/इस प्रकार, भारत में धर्मनिरपेक्षता इसकी बहुलवादी विविधताओं का परिणाम है और यह भारत को बहुत वर्षो से संचालित कर रहा है और ऐसा करना जारी है।

सोचिये और करिये

बहुलवाद की अवधारणा को समझाने के लिए अपने आस-पास की जनजाति, जाति और धार्मिक समूहों की एक सूची बनाए। उनके बीच अन्तः क्रिया और अन्तः संचार (संपर्क) पर भी संक्षिप्त लेख लिखे।

3.3.2 राष्ट्रवाद

राष्ट्रवाद को सामान्यतः संप्रभु राष्ट्र-राज्यों की स्थापना के लिए एक राजनीतिक सिद्वांत के रूप में देखा जाता है। सुब्रत के नंदा (2006) ने तर्क दिया है कि बहु-राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रवाद को विभिन्न स्तरों पर अलग तरह से देखा गया है। भारत के भाषाई और प्रांतीय आंदोलनों के कुछ मामलों के विश्लेषण द्वारा उन्होने यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया कि बहु-संजातीय देशों में, जैसे भारत में, राष्ट्रवाद वृहत स्तर पर राजनीतिक अर्थ और क्षेत्रीय स्तर पर सांस्कृतिक अर्थ धारण करता है। राजनैतिक अर्थ वृहत स्तर पर संप्रभु राष्ट्र राज्य की स्थापना की प्रतीक है, और सांस्कृतिक धारणा, सामान्यतः समान संप्रभु राज्य के अंदर दिये गये प्रान्तीय राजनीतिक स्थान में विशिष्ट सास्कृतिक राष्ट्र/राष्ट्रीयता बनाये रखने को रेखांकित करती है।

भारत एकल संप्रभु राजव्यवस्था के ढ़ॉचें के भीतर कई राष्ट्रीयताओं के आवास के साथ राष्ट्रीय एकीकरण के प्रयासों के बीच सामाजस्य स्थापित करने के कठिन कार्य का सामना कर रहा है। यह कार्य और अधिक कठिन हो जाता है जैसे ही स्वतंत्र भारत धर्मनिरपेक्ष लोकतात्रिक राजनीतिक व्यवस्था को अपनाता है। यह अच्छी तरह से पता है कि भारत सांस्कृतिक बहुलवाद/विविधता की एक असली भूलमुलैया है। भारत में सांस्कृतिक बहुलवाद की अनेक भाषाओ, धर्मो, जनजातियों, प्रजातियों और जातियों तथा उप-जातियों में से भाषा, जनजाति और कुछ हद तक, धर्म निर्णायक है क्योकि वे न केवल समूह पहचान के महत्वपूर्ण प्रतीक के रूप में कार्य करते है बल्कि राष्ट्रीयता के गठन के लिए व्यवहार्य आधार भी प्रदान करते है। तथ्य यह है कि भारत में भाषाई और जनजातिय पहचान एक निश्चित क्षेत्र से जुड़ी है अर्थात ''मातृभूमि'' या ''देश'' की अवधारणा उनकी विशेषता को मजबूत करती है।

यही नहीं 'देश' शब्द का तात्पर्य केवल एक क्षेत्र नही है बल्कि लोग, भाषा, जीवन की शैली और संस्कृति के तरीको से भी है, असल में, शब्द का यूरोपीय अभिप्राय एक राष्ट्र है। माधव एन. देशपांडे (1983) ने देखा कि 'मातृभूमि' की अवधारणा भारतीय शब्दावली में

विभिन्न रूप में व्यक्त की गयी है जैसे 'देश; 'नाडु; 'राष्ट्र', इत्यादि। इसके साथ ही, भारत में कुछ भाषाई और जनजातिय समूह अपने अलग इतिहास, संस्कृतिक, मिथकों, प्रतीको और मूल्यों को बनाये रखते है। ये सभी तत्व भारत में क्षेत्रीय रूप से निहित सांस्कृतिक राष्ट्रीयताओं को बनाते है और उसका बहु-राष्ट्रीय चरित्र प्रस्तुत करते है। इस तरह की एक जटिल सामाजिक-सांस्कृतिक वास्तविकता में, भाषा, संस्कृति और मातृभूमि के बीच के स्वभाविक संपर्क को बाधित करने का कोई भी प्रयास प्रभावित लोगों के बीच में असंतोष का कारण होगा। वास्तव में, क्षेत्र, भाषा और संस्कृति का यह स्वभाविक संपर्क भारत में पहली बार उपनिवेश काल के दौरान बाधित हुआ था।

'भारतीय भारत' को 'ब्रिटिश भारत' से अलग रखने की औपनिवेशिक नीति शायद अखिल भारतीय स्तर पर राष्ट्रवाद के विकास का गला घोटने के लिए बनाई गयी थी। हालाकि, अखिल भारतीय स्तर पर बढ़ने के लिए राष्ट्रवाद ने लम्बा समय नहीं लिया। भारतीय राष्ट्रवाद ने एक उदार-राजनीतिक सामग्री अपना ली और यह अखिल भारतीय भू-राजनीतिक एकता तथा विभिन्न सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की पृष्ठभूमि से संबद्व लोगों द्वारा साझा की गई उपनिवेशवाद विरोधी धारणा से विकसित हुआ था। असल में, अखिल भारतीय मध्यम वर्ग के विभिन्न व्यापक प्रतिनिधित्व शामिल, द्वारा व्यक्त की गई।

अखिल भारतीय स्तर के अलावा, भारत में राष्ट्रवाद को क्षेत्रीय राष्ट्रीय स्तर भी देखा गया था। अखिल भारतीय राष्ट्रीय चेतना के विपरीत, हॉलाकि, क्षेत्रीय राष्ट्रीय चेतना पहचान बनाए रखने की मांग के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और मातृभूमि को देश में दूसरी राष्ट्रीयताओं की तुलना में बचाने के रूप में उभरी थी। यह इस संदर्भ में है कि क्षेत्रीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद अखिल भारतीय राजनीतिक राष्ट्रवाद से अलग है जिसका उद्देश्य भारत की स्वतंत्रता और भारतीय राष्ट्र-राज्य की स्थापना था। इसके अलावा, क्षेत्रीय राष्ट्रीय चेतना पहले से मौजूद धारणा के सांस्कृतिक अर्थ से उत्पन्न हुई है जो विभिन्न संस्कृति, सांझे इतिहास, विशिष्ट भाषा और सामान्य क्षेत्र के संदर्भ में परिभाषित की गई थी। इस प्रकार भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की उत्पति औपनिवेशिक समय से पहले की है। इस तरह के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के उदभव को औपनिवेशिक भारत में मुख्य रूप से कृत्रिम प्रांतीय इकाइयों के अस्तित्व के लिए जिम्मेदार ठहराया गया था।

दूसरी जगहों के औपनिवेशिक अनुभवों की तरह, भारत में भी, ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने प्रशासनिक प्रांतो को बनाया था जो राष्ट्रीयताओं के बाह्य विभाजन और उनके सामाजिक सांस्कृतिक जुड़ाव से मेल नही रखते थे। कुछ मामलो में, एक प्रांतीय इकाई में कई राष्ट्रीयताओं को मिला दिया गया था। उदाहरण के लिए, बंगाल प्रांत (प्रेसीडेन्सी) में विभिन्न राष्ट्रीयताएँ जैसे बंगाली, उडिया, असमिया, मैथली, भोजपुरी और जनजातीय समुदायों का एक समूह था। मद्रास प्रांत में तमिल, तेलगू, मलयालम और कन्नड़ सम्मिलित थे जबकि बम्बई प्रांत मराठी, गुजराती, कन्नड और कोंकणी से बना था। कुछ दूसरे दृष्टांतों में, एक निश्चित राष्ट्रीयताओं के लोगो (उदाहरण के लिए उडिया, कन्नड आदि) दो या अधिक प्रांतों में विभाजित थे। भौगोलिक एकीकरण ने छोटी राष्ट्रीयताओं को अल्पसंख्यक स्थिति में ला दिया था, और विभाजन के कारण कुछ राष्ट्रीयताओं का सांस्कृतिक विखंडन और क्षेत्रीय विघटन हुआ था। संस्कृति और क्षेत्र के विखंडन ने भाषा, संस्कृति और क्षेत्र के बीच अलगाव पैदा कर दिया था। इस प्रकार, दोनों मामलों में तनाव और संघर्ष सामने आया था; भौगोलिक एकीकरण के मामलें में, एक राष्ट्रीयता के दूसरी पर वर्चस्व के कारण संघर्ष उत्पन्न हो गया था और विभाजन व तुष्टीकरण के मामले में, मातृभूमि और पहचान खोने के डर के कारण तनाव उत्पन्न हो गया था।

मुख्य धारा की राष्ट्रीयताएं जिनकी संस्कृति और क्षेत्र विभाजित नही हुए और जो बहुमत में आ गयी, अनुकूल औपनिवेशिक दशाओं के अन्तर्गत प्रभुत्व राष्ट्रीयता के रूप में उभर गये थे। हालांकि उनकी संस्कृति और भाषा औपनिवेशिक आश्रय में फलीभूत हुई थी फिर भी प्रभुत्व और गौण राष्ट्रीयताओं की भाषा और संस्कृति ने गंभीर खतरों का सामना किया। इसके अलावा, वंचित राष्ट्रीयताओं ने अपनी सास्कृतिक पहचान को मुख्यधारा के अधीन रहने को उनकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से वंचित रहने का मुख्य कारण माना है।

एक संस्कृति-अनुकूल प्रान्तीय इकाई के भीतर अपनी सांस्कृतिक पहचान को सुरक्षित और संरक्षित रखने की अत्यधिक चेतना ने औपनिवेशिक भारत में कई सांस्कृतिक राष्ट्रवादों को जन्म दिया था। उडिया, सिंधी, असमिया, तेलगू तथा मलयालम के मध्य राष्ट्रीय चेतना का जन्म और झारखण्ड की जनजातियों द्वारा जनजातीय पहचान का दावा इसके कुछ उदाहरण है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, क्षेत्रीय स्तर पर ये सांस्कृतिक राष्ट्रवाद भारत के उदारीकरण के लिए औपनिवेशिक विरोधी राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ-साथ लगे रहे। भारत के परिप्रेक्ष्य में कुछ अध्ययनों ने राष्ट्रवाद के इस दोहरे चरित्र पर विचार-विमर्श किया है। उदाहरण के लिए, ए.आर.देसाई (1966:368) ने देखा कि भारतीय स्वतंत्रता के संगठित राष्ट्रीय आंदोलनों के दृष्टिकोण से आत्मनिर्णय के लिए किए गये राष्ट्रीयताओं/कौमों के आंदोलन ने निर्णायक महत्व ग्रहण किया था। भारत में राष्ट्रीय पहचान पर कुछ हालिया अभिव्यक्तियों ने इस प्रसंग को काफी स्पष्ट रूप से दोहराया है। जैसे एम.एन.कर्ण (2000:94) ने देखा कि भारत में भाषा और क्षेत्र दोनों ही क्षेत्रीय राष्ट्रीय पहचान को बनाते है और अखिल भारतीयता तटस्थ रूप से क्षेत्रीय राष्ट्रीय चेतना के साथ-साथ रहती है।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित वाक्यों को सही या गलत बताइये/प्रत्येक वाक्य के सामने सही (√) या गलत (×)का चिन्ह लगाये।

   क) धर्म की स्वतंत्रता तब मजबूत होती है जब एक धर्म को अधिकार और विशेषाधिकार दिये जाते है पर दूसरे को नहीं।

   ख) भारत लिखित संविधान वाला दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है।

   ग) विचारधारा का तात्पर्य विचारो की उस व्यवस्था से है जो विश्व का वर्णन करने और उसे बदलने दोनो बातो की आकांक्षा रखती है।

   घ) राष्ट्रवाद को सामान्यतः दूसरे राष्ट्र-राज्यों के सामने अपने देश की संस्कृति के प्रति अंध निष्ठा के रूप में देखा जाता है।

2) 'द इंडियन आइडियालॉजी' नामक पुस्तक में वर्णित भारतीय इतिहास के तीन चरण क्या है?

   क) .....

   ख) .....

   ग) .....

3.4 भारतीय सभ्यता

भारतीय सभ्यता विश्व की दूसरी सभ्यताओं से इसकी निरंतरता और विविधता, इसके समायोजित लोकाचार और यौगिक चरित्र के संदर्भ में विलक्षण है।

सुनील खिलनानी ने अपनी पुस्तक 'दा आइडिया ऑफ इण्डिया' (भारत का विचार) जो पेंगुइन प्रकाशन द्वारा प्रकाशित है, में लिखा हैः

''भारत का संस्थापक विचार केवल बहुलवाद और लोकतंत्र के अमूर्त मूल्यों या विचारों के प्रति प्रतिबद्व कभी नहीं था बल्कि भारतीय राजनीति की मजबूरियों और बाधाओं की व्यवहारिक समझ में निहित था। भारतीय, जो दूसरी जगह के अन्य व्यक्तियों की भांति ही गुणी, उदारवादी, सैद्धांन्तिक या विशेष रूप से सहिष्णु लोग है- वे अत्यन्त आत्म हित रखते है (1997:xiii)।

आगे उन्होने लिखा है कि ''भारत के विचार की पहचान सजातीय और एकार्थक नहीं है। वास्तव में, किसी भी अकेले विचार के लिए यह संभव नहीं है कि वह 130 करोड़ भारतीयों की विभिन्न ऊर्जाओं, क्रोध और उम्मीदों को ग्रहण कर सके और ना ही कोई संकीर्ण विचार - जो एक गुण पर आधारित है - उनकी उम्मीदो को पूरा कर सकता है। इन परिस्थितियों में, भारत के विचार को उजागर करना कुंठित, और यहॉ तक कि अक्खड़पन, लग सकता है। परन्तु मेरी पुस्तक का एक उद्देश्य उस अवधारणा को समझना है जो आधुनिक भारत को बौद्विक और व्यवहारिक मजबूती प्रदान करती है, जिसने पिछली आधी शताब्दी से इसको इसकी पृथक पहचान प्रदान की है, और बहुत सारे अन्य नये राज्यों से अलग, इसको लाकतांत्रिक, सहिष्णु और खुले विचारों वाला रखा है।

भारतीय सभ्यता 5,000 वर्षो से अधिक पुरानी है। इस थोड़े से समय के दौरान हमनें बहुत सी संस्कृतियों, प्रजातियों, योद्वाओं और उपद्रवियों को आत्मसात किया है। वेद, पुराण और उपनिषद यहॉ लिखे गये है। दुनिया को आध्यात्मिक ज्ञान भारत द्वारा प्रदान किया गया है। ऐसा माना जाता है कि भारत की सभ्यता की शुरुआत जिन नदियों के किनारों पर हुई है वे सिन्धु और गंगा नदी है। भारत का 'इण्डिया' नाम सिन्धु नदी (अंग्रेजी में इंडस) से लिया गया है।

सभ्यता को समझने के लिए हमे वह अध्ययन लेना है जो सूचीबद्व (सांस्कृतिक लक्षणों की सूची बनाना); सांस्कृतिक सार (आवश्यक अंतर्निहित प्रक्रिया को पहचानने के लिए); और सांस्कृतिक संप्रेषण (स्थायी तत्व जो समाज के भागों के बीच प्रेषित होते है) पर आधारित है। एन.के.बोस (1967), सुरजीत सिन्हा, (1974) बर्नार्ड एस. कोहन (1971) और अन्यों ने भारतीय समाज को समझने के लिए सभ्यतावादी (Civilizational) परिप्रेक्ष्य का प्रयोग किया है। उन्होंने भारत की विभिन्न संरचनाओं की एतिहासिक, निरंतरता और अंतर संबंधों का पता लगाने की कोशिश की है। धर्म, जाति, गॉव, राज्य निर्माण, भूमि संबंधों और इसी तरह के अन्य तीव्र और एतिहासिक रूप से गढ़े हुए वर्णनों आलेखों को प्राप्त करने के लिए वे किसी भी सभ्यता के संरचनात्मक अंतग्रहण का विश्लेषण करते है। वे विश्वास करते है कि एक सामाजिक व्यवस्था, एक राष्ट्र या एक सभ्यता को केवल एतिहासिक-सभ्यतावादी ढ़ांचे में ही समझ सकते है।

आर.सी.मजूमदार ने कहा है ''अभी तक उपलब्ध साक्ष्यों के अनुसार इसमें जरा भी संदेह नहीं है कि भारतीय सभ्यता ने स्वयं को एक तरीके और एक स्वरूप के रूप में प्रकट किया है जो उससे बहुत अलग है जिससे हम बाकी दुनिया में परिचित है। इसके परिणाम स्वरूप हम, भारत के इतिहास को दूसरे अर्थ में समझने के लिए और इसकी संस्कृति और सभ्यता का मूल्यांकन करने के लिए मूल्यों के एक अलग पैमाने को ग्रहण करते है। युद्व और विजय, राष्ट्रों और साम्राज्यों के उत्थान और पतन और राजनीतिक विचारों और संस्थाओं को हमारे

अध्ययन का मुख्य उद्देश्य नहीं माना जाना चाहिए और इनको दोयम दर्जे के महत्व की स्थिति प्रदान की जानी चाहिए। दूसरी ओर, दर्शन, धर्म, कला पर अत्यधिक ध्यान केन्द्रित होना चाहिए और इसके बाद, सामाजिक और नैतिक विचारों के विकास और इसके बाद, सामाजिक और नैतिक विचारों के विकास और इन मानवीय आदर्शो और संस्थाओं की सामान्य प्रगति पर ध्यान होना चाहिए जो भारत के आध्यात्मिक जीवन को विशेष गुण और दुनिया की सभ्यता के लिए उसका सबसे बड़ा योगदान देते है।''

रविन्द्रनाथ टैगोर (1930) ने लिखा है ''हमारे वास्तविक संबंध 'भारतवर्ष' के साथ है जो हमारी पाठ्य पुस्तको के बाहर है। अगर इस संबंध का इतिहास पर्याप्त रूप से लम्बे समय तक खो जाता है तो हमारी आत्मा अपने विश्वास का आधार खो देती है। आखिरकार, हम भारत में खरपतवार और परभक्षी पौधों की तरह नहीं है। कई सैकड़ों वर्षों मे, यह हमारी सैकड़ों हजारों जडे ही है जिन्होने भारतवर्ष के दिल पर कब्जा कर रखा है। परन्तु दुर्भाग्य से, हम इतिहास के उस प्रकार से पढ़ने के लिए बाध्य है जिससे हमारे बच्चे इस तथ्य को भूल जाते है। इससे ऐसा प्रतीत होता है जैसे हम भारत में कोई नहीं है.....''

बोध प्रश्न 2

1) किन्ही तीन प्रमुख मानदण्डों की सूची बनाइए जो भारतीय सभ्यता को विश्व की अन्य सभ्यताओं से पृथक करते हो।

   क) .....

   ख) .....

   ग) .....

2) किन्ही तीन आयामों के नाम बताइए जिनके अध्ययन को सभ्यता की अवधारणा को अच्छे से समझने के लिए सम्मिलित किया जाना चाहिए।

   क) .....

   ख) .....

   ग) .....

3.5 भारत में आधुनिकीकरण और सामाजिक परिवर्तन

योगेन्द्र सिंह (1973) ने सामाजिक परिवर्तन को विचारधारा की तरह माना है। योगेन्द्र सिंह ने अपनी पुस्तक 'सोशल चेंज इन इण्डियाः क्राइसिस एण्ड रेसिलिएंस' में आधुनिक भारत में आधुनिक भारत सामाजिक परिवर्तन की दो प्रकार की प्रवृत्तियों का वर्णन किया हैः ''पहली, सामाजिक संरचना में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है परन्तु बिना समाज में संरचनात्मक परिवर्तन लाये। इसका परिणाम तनाव होता है और अक्सर जो सामाजिक संकट का निर्माण करता है। दूसरी, व्यक्तिपरक विचार सीमा या सामाजिक परिवर्तन के संबंध में लोगों की चेतना में आकस्मिक पूर्ण परिवर्तन हुआ है।'' इस संदर्भ में योगेन्द्र सिंह का भारतीय परम्पराओं के आधुनिकीकरण पर विशेष लेख एक उल्लेखनीय उदाहरण हो सकता है। जिसमें भारतीय समाजशास्त्र के भारतीयकरण के लिए कई अंतर्दृष्टि शामिल है।

भारतीय सभ्यता हमेशा ही संपूर्णता के सिद्वांत, अनुक्रम, निरंतरता और श्रेष्ठता पर आधारित रही है और इसका चरित्र रूढ़िवादी परिवर्तनों और इसकी वृहत परम्परा व लघु परम्परा में

परिवर्तन से प्रभावित है परन्तु संस्थाओं के स्वरूप में कोई परिवर्तन नही हुआ क्योकि अंतर्जाति परिवर्तन केवल 'संस्कृतिकरण' तक ही सीमित थे। वास्तविक परिवर्तन 17वीं शताब्दी में पश्चिमी सभ्यता के संपर्क से आया था जो उपनिवेशवाद की प्रक्रिया के साथ शुरू हुआ था। इस्लाम के साथ पहले के संपर्क ने केवल परम्परा को मजबूत किया था क्योकि इस्लाम एक पारम्परिक धर्म था और इस्लामिक परम्परा और हिन्दू परम्परा का संयोग हुआ जिसका प्रभाव फारस में भी हुआ था। भारतीय उपमहाद्वीप के इस्लाम ने भी पदक्रम के लक्षणों को अपना लिया था क्योकि ज्यादातर मुस्लिम धर्म परिवर्तन किए हुए हिन्दू थे।

राजनीतिक संरचना में भी, सामन्तवादी व्यवस्था दोनो धर्मो में समान थी। विचारधाराओं में अंतर के बावजूद, भारतीय उपमहाद्वीप में दोनो धर्मो में समन्वयात्मक संबंध दृश्यमान थे। सामाजिक परिवर्तन और आधुनिकीकरण दोनो अलग-अलग चीजे है। खासकर पारम्परिक समाजो का मूल्यांकन करते समय उद्विकास के आधुनिक और पूर्व-आधुनिक प्रकारों के बिना भी सामाजिक परिवर्तन का अध्ययन करने के लिए पश्चिमी उदविकासी दृष्टिकोण का प्रयोग करना भारतीय समाज के विभिन्न प्रतिमानों के साथ अन्याय होगा। भारतीय सामाजिक व्यवस्था, बिना किसी भी आधुनिक धारणा को विकसित किए, जिसका अध्ययन गुणात्मक रूप से विशिष्ट उदविकासवादी भेदभाव से किया जा सकता है, परिवर्तन के दौर से गुजर रही थी।

विभिन्न सैद्धान्तिक समझ और व्यवहारिक अनुभवों से तत्वों को लेते हुए, भारतीय समाज में परिवर्तन अपने आप होने वाला है और इन परिवर्तनों का अध्ययन, विविधता की उपस्थिति और विभिन्न समाजों पर आधुनिकता के भिन्न - प्रभावों के कारण, किसी एक दृष्टिकोण से नही किया जा सकता है। योगेन्द्र सिंह (1973) के अनुसार, भारत में सामाजिक परिवर्तन पर चर्चा निम्नलिखित सैद्वन्तिक दृष्टिकोणों के आधार पर हो सकती हैः

1) सामाजिक परिवर्तन के कारण को सामाजिक व्यवस्था या परम्परा के भीतर और सामाजिक व्यवस्था के बगैर दोनों तरह से ढूढा जाना चाहिए। इसके लिए हमको वो अवधारणाए मिलती है जिनका उपयोग रेडफील्ड और सिंगर ने विशेष रूप से उपयोगी होने के नाते और परिवर्तन के विशेष रूप से उपयोगी होने के नाते और परिवर्तन के विषम उत्पत्ति संबधी/विविधता या बहिर्जात तथा नियत विकासवादी या अन्तर्गत स्रोतों के बीच अंतर करने के लिए किया है।

2) सांस्कृतिक संरचना और सामाजिक संरचना के बीच के अंतर, तुलनात्मक रूप से स्वतन्त्र इन दोनो व्यक्तिपरक क्षेत्रों के स्तर पर परिवर्तन को देखने की आवश्यकता पर केन्द्रित होने के लिए भी किया है। फिर से, रेडफील्ड़ का अनुसरण करते हुए, सांस्कृतिक संरचना को और अधिक लघु परम्परा और वृहत परम्परा की श्रेणियों में बॉट दिया है।

3) इन अंतरो का अनुसरण उन परिस्थितियों/संदर्भो पर ध्यान रखने की जरूरत के कारण किया जाता है जिनके द्वारा परिवर्तन की प्रक्रियाओं का निरीक्षण वृद्धि और गम्भीरता के मामले में हो सकता है।

4) अन्त मे, परिवर्तन की दिशा 'परम्पराकरण' से 'आधुनिकीकरण' की ओर रेखीय उदविकासीय रूप में प्रदर्शित होती है। परम्पराकरण परिवर्तनों के सम्पूर्ण विस्तार को सम्मिलित करता है जो सांस्कृतिक और सामाजिक संरचनाओं में नियतविकासवादी

प्रतिमानो द्वारा संचालित होता है। ठीक इसी प्रकार, आधुनिकीकरण विविधता के संपर्को द्वारा होने वाले परिवर्तनों के शुद्ध संतुलन को प्रदर्शित करता है।

परिवर्तन की कारणीय शक्तियाँ, वास्तविक क्षेत्र परिस्थितियाँ और दिशा हमको तार्किक सीमाएं प्रदान करती है जिनके अन्दर भारत में सामाजिक परिवर्तन की और भी अधिक विशिष्ट प्रक्रियाओं को देखा और वार्णित किया जा सकता है। इन विशिष्ट प्रक्रियाओं और इनका वर्णन करने वाली संबंधित अवधारणाओं को योगेन्द्र सिंह द्वारा प्रतिमान (पैराडाइम) के रूप में दर्शाया गया है। योगेन्द्र सिंह ने विशिष्ट अवधारणाओं के महत्व का परीक्षण प्रसांगिक वास्तविक क्षेत्र से संबंधित परिवर्तन के विश्लेषण के दौरान किया।

योगेन्द्र सिंह ने सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को दो परिप्रेक्ष्यों के माध्यम से देखा है- 1) संरचनात्मक, और 2) उदविकासिय। संरचनात्मक परिवर्तनों को सामाजिक गतिशीलता, प्रौद्योगिक आधुनिकता और परिवर्तीत कारकों द्वारा देखा जाता है तथा आधुनिकीकरण को इन मूल्यों के प्रभाव और उनके प्रभावों, जो रूपांतरण कि प्रकृति और सीमाएं निर्धारित करता है, कि रूप में देखा जाता है। जबकि, एक उदविकासीय परिप्रेक्ष्य सैद्धान्तिक मान्यताओं पर आधारित होता है और ये सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य या तो संरचनात्मक प्रकार्यात्मक या फिर द्वंद्वात्मक हो सकते है। द्वंद्वात्मक दृष्टिकोण पुरानी संस्थाओं के 'विनाश' को परिवर्तन के लिए पूर्वाकांक्षित मापदण्ड मानता है और मनो-तांत्रिकीय कारकों में परिवर्तन को इस पद्वति में सराहा नही जाता है। संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण उदविकास को अमानवीय से मानवीय और इससे परे एक सतत प्रक्रिया मानता है। जैसे कि टॉलकट पारसन्स ने लिखा है ''आधुनिकीकरण एक 'उदविकासीय सार्वभौमिक' प्रतिमान मॉडल का अनुसरण करता है। वह सामाजिक संस्थाओं की समस्थिति में विश्वास करता है और क्रान्ति को इस संतुलन के विनाश के रूप में देखता है।''

बोध प्रश्न 3

1) योगेन्द्र सिंह के शब्दों में 'परम्पराकरण' और 'आधुनिकीकरण' का क्या मतलब है? अपना उत्तर एक वाक्य में दीजिए।

   क) .....

   ख) .....

2) भारतीय समाजशास्त्र में योगेन्द्र सिंह द्वारा वर्णित चार प्रकार के सैद्धान्तिक विकासों के नाम बताए।

   क) .....

   ख) .....

   ग) .....

   घ) .....

3) निम्नलिखित वाक्यों को सही या गलत बताइए। प्रत्येक वाक्य के सामने सही (√) या गलत (×) का चिन्ह लगाइए।

   क) आधुनिकता की अवधारणा को परम्परा से पृथक करके नहीं समझा जा सकता है।

ख) टालकट पारसंस ने लिखा है कि ''आधुनिकीकरण एक 'उदविकासीय सार्वभौमिक प्रतिमान/मॉडल का अनुसरण करता है।''

ग) डी.पी. मुखर्जी, ए.आर.देसाई और राम कृष्ण मुखर्जी ने भारतीय समाजशास्त्र में द्वंद्वात्मक प्रतिमान/मॉडल के महत्व पर जार दिया है।

घ) संस्कृतिकरण भारतीय परम्परा की संरचना के भीतरी परिवर्तन का वर्णन करता है।

3.5.1 आधुनिकीकरण और परम्परा की निरंतरता

सामाजिक परिवर्तन की तरह आधुनिकीकरण एक समग्र अवधारणा ही नहीं बल्कि एक वैचारिकी अवधारणा भी है। आधुनिकीकरण के प्रतिमान विचारधाराओं के चुनाव के साथ बदलते है। इस अवधारणा की समग्र प्रकृति इसे सामाजिक विज्ञानो की शब्दावली में व्यापक रूप में प्रस्तुत करती है और इसके संबंधों को 'विकासः 'वृद्वि', 'उदविकास' और 'प्रगति' जैसी अवधारणाओ के साथ जोड़ती है। तीसरी दुनिया के देशों में आधुनिकीकरण का मूल समस्यात्मक विचार सैद्धान्तिक है, खास तौर पर तब जब हम भारत में आधुनिकीकरण की विचारधारा को परखते है। लुई डयुमा ने प्रभुत्व परम्परा और निरपेक्ष मूल्यों के बीच सापेक्ष स्वायतता को पाया है। पूर्व-औपनिवेशिक काल में, भारत की सूक्ष्म संस्थाओं जैसे जाति व्यवस्था, परिवार, गॉव, समुदाय ने पारम्परिक संरचना को कायम रख रखा था।

हॉलाकि, आधुनिकीकरण कुलीन संरचनाओं में समरूपता ले आया था परन्तु 'छनकर नीचे तक पहुचने' का प्रभाव प्रदर्शित नहीं हुआ है क्योकि इन कुलीनों को शामिल करने के सामाजिक आधार सीमित थे। सुधारों के वाद,ये आधार विस्तृत हो गये और कुलीन संस्कृति को शहरी केन्द्रों में प्रमुखता मिली।

आधुनिकता की अवधारणा को परम्परा से पृथक करके नहीं समझा जा सकता है। इसलिए, यह देखना आवश्यक है कि आधुनिक मूल्य परम्परागत मानदण्डों में कैसे आत्मसात होते है और एक समग्र नवीन मानदण्ड का विकास करते है, जो सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को निरन्तरता प्रदान करता है। इसीलिए आधुनिकीकरण की एतिहासिकता को भारतीय संदर्भ में देखा जाना चाहिए जिसको मैरियट (marriot) ने 'आधुनिकता का भारतीयकरण' कहा है। आधुनिकता और परम्पराएं एक साथ एक जगह पर मिलती है जहॉ परम्परागत भूमिका संरचनाएं आधुनिक मानदण्डों को रास्ता देती है और परम्परागत मानदण्ड अपनी विशेषता भी बनाए रखते है। उदाहरण के लिए, भारत की सांस्कृतिक संरचना में, इस्लामिक प्रभाव सांस्कृतिक रूपांतरण और संश्लेषण के एक महत्वपूर्ण विषम उत्पति संबंधी विविधतात्मक स्रोत का गठन करता है और इसका महत्व लघु और वृहत दोनो परम्पराओं के स्तरो पर देखा जा सकता है। उसके बाद पश्चिमीकरण भारत पर बहिर्जात सांस्कृतिक प्रभाव के मुख्य स्वरूप के रूप में आया और इसका असर भी लघु और वृहत परम्पराओं के लिए प्रासंगिकता रखता है।

सामाजिक संरचना में परिवर्तनों पर और आधिक लाभकारी ढंग से चर्चा तब की जा सकती है जब स्थूल-संरचनाओं और सूक्ष्म-संरचनाओं में अंतर किया जाये। स्थूल-संरचनाओं के उदाहरण हैः नौकरशाही, उद्योग, बाजार, नेतृत्व, राजनीतिक दल आदि/इनमें भूमिका संबंध शामिल है, जिसके पास सीमाओं का एक अखिल भारतीय विस्तार है। इसके विपरीत, सूक्ष्म-संरचनाओं जैसे नातेदारी परिवार, जाति व उपजाति और जनजाति आदि, के पास संबंधों के विस्तार के लिए सीमित सीमाएँ है। समग्र दृष्टिकोण, जैसा कि योगेन्द्र सिंह द्वारा

परिवर्तन की अवधारणाओं को एक योजनाबद्व व्यवस्था के माध्यम से दर्शाया है, व्यापक होने के साथ-साथ सैद्धान्तिक रूप से सुसंगत भी है।

अपनी पुस्तक 'एसेज ऑन माडर्नाइजेशन इन इण्डिया' (भारत में आधुनिकीकरण पर निबंध) (1977) में, सिंह ने भारत में आधुनिकीकरण में सम्मिलित भिन्न और जटिल प्रक्रियाओं, इसके द्वारा उत्पन्न शक्तियों और उनका एक गतिशील राष्ट्र और समग्र सभ्यता के रूप में भारत के अन्दर स्थायित्व, सृजनात्मकता और विकास पर असर का विश्लेषण किया है। एक एकीकृत परिप्रेक्ष्य देते हुए, योगेन्द्र सिंह उन चुनौतियों और विरोधाभासों को दर्शाते है जिनका भारत ने इसके आधुनिकीकरण के दौरान सामना किया है। क्या आधुनिकीकरण को एक वैश्विक प्रक्रिया के रूप में मान सकते है या क्या इसके पास अपनी एतिहासिकता है? आधुनिकीकरण के अनिवार्य रूप से संज्ञानात्मक और सांस्कृतिक सहसंबंध क्या है? क्या इसे सामाजिक विज्ञान में वैज्ञानिक और परिचालन धारणा के रूप में देखा जा सकता है और क्या इसके परिणाम का अनुभविक रूप में परिक्षण समाज की उप-संरचना पर किया जा सकता है? भारत में राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और शैक्षणिक आधुनिकीकरण में कौन-कौन सी प्रक्रिया सम्मिलित है? और जब ये प्रक्रियाएं जारी है तो सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विरोधाभासों के कौन से नये आयाम उभर कर आये है? और कैसे ये ताकते एक गतिशील राष्ट्र और समग्र सभ्यता के रूप में भारत के भविष्य की स्थिरता, निरंतर सृजनात्मकता और विकास के लिए उत्तरदायी है?

योगेन्द्र सिंह (1979) ने भारतीय समाजशास्त्र में विचारधारा, सिद्वांत और पद्वति पर एक महत्वपूर्ण निबंध में, भारतीय समाजशास्त्र की एक चौथाई शताब्दी की अवधि को 1952 से 1977 तक चार अनुमानित श्रेणियों में बॉटा है:

1) 1952 से 1960 - अनुकूलक परिवर्तनों और नवान्वेषण/नई खोज का काल
2) 1960 से 1965- सैद्धान्तिक प्राथमिकताओं में महत्वपूर्ण बदलाव और भारतीय समाजशास्त्र की विचारधारा और सिद्वांत में कुछ गंभीर तनावों की शुरुआतका काल
3) 1965 से 1970 - उल्लेखनीय समाजशास्त्रीय आत्म-जागरूकता और सैद्धान्तिक व मौलिक योगदानों में नई दिशाओं की वृद्धि का काल
4) 1970 से 1977- नदी परिपक्वता और ज्ञान के नये क्षितिजों का काल

उन्होने इन चार अवधियों को भारतीय समाजशास्त्र में चार प्रकार के सैद्धान्तिक विकास का श्रेय दिया है। ये सैद्धांतिक अभिविन्यास है:

क) दार्शनिक सैद्धान्तिक अभिविन्यास

ख) संस्कृतिशास्त्रीय अभिविन्यास

ग) संरचनात्मक सिद्वांतवादी अभिविन्यास

घ) द्वंद्वात्मक ऐतिहासिक अभिविन्यास

भारतीय समाजशास्त्र में दार्शनिक अभिविन्यास राधाकमल मुखर्जी, डी. पी. मुखर्जी और ए. के.सरन के योगदानों से जुडा हुआ है। योगेन्द्र सिंह (1983) के अनुसार इस अभिविन्यास ने भारतीय समाजशास्त्र की सैद्धान्तिक प्रकृति पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं डाला है। यह देखना दिलचस्प है कि इन विद्वानों की विद्वता की गहनता के बावजूद, इसका प्रभाव नाममात्र का है। पश्चिमी समाजशास्त्र का प्रभाव अधिक से अधिक ढ़क रहा था और सामाजिक समझ का आनुभविक आधार दर्शन की कठोरता से सरल दिखता था।

संस्कृतिशास्त्रीय अभिविन्यास की शुरुआत श्रीनिवास के कार्य, 'दक्षिण भारत के कुर्गो के बीच धर्म और समाज' के साथ हुई। इस अध्ययन से ब्राह्मणीकरण, संस्कृतिकरण और पश्चिमीकरण जैसे बड़ी अवधारणाओं का प्रतिपादन हुआ। संस्कृतिकरण भारतीय परम्परा के ढाँचे के भीतर के परिवर्तन को दर्शाता है।

संरचनात्मक सिद्वांतवादी अभिविन्यास शक्ति संरचना, सामाजिक स्तरीकरण, पारिवारिक संरचना, जनसांख्यिकी और ऐसे ही पहलूओं पर ध्यान केन्द्रित करता है जिनसे तरीकों (पैटर्न), व्यवस्था और पुनरावृति का पता चलता है। अनुभविक पहलूओं को अमूर्त पहलूओ, प्रतिमानों (मॉडल) और श्रेणियों में बदल दिया जाता है। संरचनात्मक अध्ययनों द्वारा तुलनात्मक ढ़ॉचा भी प्रयोग किया जाता है।

द्वन्द्वात्मक एतिहासिकता अभिविन्यास सामाजिक वास्तविकता के विश्लेषण के लिए मुख्य रूप से मार्क्सवादी दृष्टिकोण और पद्वति पर आधारित है। द्वन्द्वात्मक पद्वति को मार्क्सवादी रूप में परिभाषित नहीं किया गया है क्योकि रूपांतरण भारतीय सामाजिक वास्तविकता को ध्यान में रखकर किया गया है। हांलाकि, यह भारतीय समाजशास्त्र की कम विकसित शाखा है। डी.पी. मुखर्जी तथा रामकृष्ण मुखर्जी ने द्वंद्वात्मक प्रतिमान (Model) की महत्ता पर बल दिया है। ए.आर.देसाई ने वैचारिक उत्साह और प्रतिबद्वता के साथ निरंतर द्वंद्वात्मक-एतिहासिक दृष्टिकोण का प्रयोग किया है। उन्होने परिवर्तन की नीतियों और योजनाओं में लगातार विराधाभासों को उजागर किया है। द्वंद्वात्मक-एतिहासिक सैद्धांतिक अभिविन्यास का तेजी से विकास 70 के दशक में हुआ, जब सूक्ष्म-अनुभविक वास्तविकताएं स्थूल-संरचनात्मक सामाजिक और आर्थिक प्रक्रियाओं के साथ वर्ग अवलोकन के अधीन थी (सिंह 1983)

योगेन्द्र सिंह का चार प्रमुख सैद्धान्तिक अभिविन्यासों का वर्गीकरण महत्वपूर्ण और तार्किक रूप से सुसंगत है। योगेन्द्र सिंह (1993) के अनुसार, ये सैद्धान्तिक अभिविन्यास मूल रूप से अंतर्निहित या प्रकट वैचारिक अर्थ रखते है। अनुमानों को विश्लेषणों के स्तर पर पहचाना जा सकता है, जो एक आलोचक की तरह उस तरीके को अस्वीकार कर देता है जिसके द्वारा सामाजिक वास्तविकता प्रबन्धित होती है या सामाजिक वास्तविकता के गठन को न्यायसंगत सिद्व करता है क्योकि इसमें हेरफेर और निर्माण करने की क्षमता है। दूसरे स्तर पर, उन्हें विकल्पों, संशोधनों और सुधारों की आवश्यकता है। ज्ञान-तटस्थता शब्दों में विरोधाभास है। सामजिक वास्तविकता का मूल्यांकन और विश्लेषण फैले हुए, विभिन्न और तत्काल प्रभावों के व्यवस्थित निर्माण को दर्शाता है जो आम आदमी की धारणाओं और विचारों के द्वारा मध्यस्थता करते है। तीसरे स्तर पर, संस्थागत रूप से उत्पन्न सैद्धान्तिक अभिविन्यासों के प्रभुत्व का रूख हमारी अपनी बौद्विक परम्पराओं को खण्डित और विवेकहीन करने में है।

3.6 सारांश

इस इकाई ने भारतीय समाज की एक बहुत वर्णनात्मक छवि को प्रस्तुत किया है। सबसे पहले, 'विचारधारा', 'विचारधारात्मक चित्रण' जैसी अवधारणाओं को स्पष्ट किया गया था। विचारधारात्मक आधार जो भारतीय विचारधारा की मूलभूत विशेषताओं जैसे बहुलवाद और राष्ट्रवाद के पीछे है उनका वर्णन किया गया। भारत के बहुलवाद को इसकी विविधता में एकता के संदर्भ में अच्छे से समझा गया है। अखिल भारतीयता तटस्थ रूप से क्षेत्रीय राष्ट्रीय चेतना के साथ-साथ रहती है। अगले भाग ने बताया कि भारतीय सभ्यता विश्व की

इसकी सभ्यताओं से इसकी निरंतरता और विविधता, इसके समायोजित लोकाचार और यौगिक चरित्र के संदर्भ में विलक्षण है। अखिरी भाग में सामाजिक परिवर्तन के विचारध ाारात्मक तत्वों, आधुनिकीकरण और भारत में परम्परा की निरंतरता को देखा गया। वह कहा जाता है कि भारत में परम्परा की निरंतरता को देखा गया। यह कहा जाता है कि भारत में परम्परा और आधुनिकता एक दूसरे के लिए बाधा नहीं है बल्कि साथ-साथ चल रहे है। परिवर्तन की कारणीय शक्तियां, वास्तविक क्षेत्र, परिस्थितियाँ संदर्भ और दिशा हमको तार्किक सीमाएं प्रदान करती है जिनके अन्दर भारत में सामाजिक परिवर्तन की और भी अधिक विशिष्ट प्रक्रियाओं को देखा और वर्णित किया जा सकता है।

3.7 संदर्भ

Majumdar R. C 1951 The History and Culture of the Indian People (Bombay: Bharatiya Vidya Bhavan,), vol. 1, p. 42.

Nanda Subrat K 2006 Cultural Nationalism in a Multi-National Context: The Case of India, Sociological Bulletin, 55 (1), January-April, Pp. 24-44

Singh Yogendra 1973 Modernization of Indian tradition: a systemic study of social change, Thomson Press (India), Publication Division.

Singh Yogendra 1978 Essays on modernization in India, Manohar,.

Singh Yogendra 1993 Social Change in India: Crisis and Resilience, Har-Anand Publications.

Tagore Rabindranath, The History of Bharatavarsha, available online at www.ifih.org.

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित वाक्यों को सही या गलत बताइए। प्रत्येक वाक्य के सामने सही (/) या गलत (×) का चिन्ह लगाइए।

   क) गलत (×)

   ख) सही (√)

   ग) सही (√)

   घ) गलत (×)

2) भारतीय विचारधारा (दॉ इंडियन आइडियॉलाजी) नामक पुस्तक में वर्णित भारतीय इतिहास के तीन चरण क्या है?

   उत्तर - तीन चरण है-

   क) गांधी जी के नेतृत्व में स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष

   ख) 1947 का विभाजन और नेहरू जी के नेतृत्व में भारतीय गणतंत्र का निर्माण

   ग) भारतीय राष्ट्रवाद

बोध प्रश्न 2

1) किन्ही तीन प्रमुख मानदण्डों की सूची बनाइए जो भारतीय सभ्यता को विश्व की अन्य सभ्यताओं से पृथक करते है।

   क) इसकी निरंतरता और विविधता

   ख) इसके समायोजित लोकाचार

   ग) यौगिक चरित्र

2) किन्ही तीन आयामों के नाम बताइए जिनको एक अध्ययन में सभ्यता की अवधारणा को अच्छे से समझने के लिए सम्मिलित किया जाना चाहिए।

   क) सूचीबद्व/प्रसूचीकरण (सांस्कृतिक लक्षणों की सूची बनाना)

   ख) सांस्कृतिक सार (आवश्यक अंतर्निहित प्रक्रिया को पहचानने के लिए)

   ग) सांस्कृतिक संप्रेषण/संचार (स्थायी तत्व जो समाज के भागों के बीच प्रेषित होते है)

बोध प्रश्न 3

1) योगेन्द्र सिंह के शब्दों में 'परम्पराकरण' और 'आधुनिकीकरण' का क्या मतलब है ? अपना उत्तर एक वाक्य में दीजिए।

   क) परम्पराकरण परिवर्तनों के सम्पूर्ण विस्तार को सम्मिलित करता है जो सांस्कृतिक और सामाजिक संरचनाओं में नियतविकासवादी प्रतिमानों द्वारा संचालित होता है।

   ख) आधुनिकीकरण विषमउत्पत्ति संबंधी/विविधता के संपर्को द्वारा होने वाले परिवर्तनों के शुद्ध संतुलन को प्रदर्शित करता है।

2) भारतीय समाजशास्त्र में योगेन्द्र सिंह द्वारा वर्णित चार प्रकार के सैद्धान्तिक विकासों के नाम बताइए।

   क) दार्शनिक सैद्धांतिक अभिविन्यास

   ख) संस्कृतिशास्त्रीय अभिविन्यास

   ग) संरचनात्मक सिद्वांतवादी अभिविन्यास

   घ) द्वंद्वात्मक ऐतिहासिक अभिविन्यास

3) निम्नलिखित वाक्यों को सही या गलत बताइए। प्रत्येक वाक्य के सामने सही (√) या गलत (×) का चिन्ह लगाइए।

   क) सही (√)

   ख) सही (√)

   ग) सही (√)

   घ) सही (√)

शब्दावली

राष्ट्रवादः राष्ट्रवाद व्यक्तियों या समूहों की यह भावना है कि वह/वे एक राष्ट्र से संबंधित है। यह एक राष्ट्र से अपनेपन या निष्ठा का भाव है जो उनके जन्म या एक निश्चित राष्ट्र का सदस्य होने के कारण आता है।

जातिः एक आरोपित समूहीकरण जो समुदाय/समानता पर आधारित है। वृहत परम्पराः सांस्कृतिक तत्व या परम्परा, जो लिखित है और समाज के अभिजन, जो शिक्षित और निपुण है, के द्वारा स्वीकृत है।

लघु परम्पराः सांस्कृतिक तत्व या परम्परा, जो मौखिक है और ग्रामीण स्तर पर संचालित है।

संस्कृतिकरणः एम.एन.श्रीनिवास ने सर्वप्रथम इस अवधारणा का प्रयोग सामाजिक परिवर्तन की एक प्रक्रिया को दर्शाने के लिए किया था जिससे एक निम्न हिन्दू जाति या जनजाति उच्च जाति के रीति रिवाज, विचारधारा और जीवन के तरीकों को अपनी जाति प्रस्थिति को सुधारने के विचार से ग्रहण करते है।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

Majumdar R. C 1951 The History and Culture of the Indian People (Bombay: Bharatiya Vidya Bhavan,), vol. 1, p. 42.

Nanda Subrat K 2006 Cultural Nationalism in a Multi-National Context: The Case of India, Sociological Bulletin, 55 (1), January-April, Pp. 24-44

Singh Yogendra 1973 Modernization of Indian tradition: a systemic study of social change, Thomson Press (India), Publication Division.

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 4 भारत की नृजातविज्ञान छवि*

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 नृजातविज्ञान छवि

4.3 भारत की नृजातविज्ञान छवि

4.4 विविधता में एकता

4.5 ग्रामीण भारत

4.6 जाति

4.7 जनजाति

4.8 धर्म

4.9 लघु और वृहत परम्पराएँ

4.10 सारांश

4.11 संदर्भ

4.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपः

- छवि के विचार और नृजातविज्ञानी छवि की अवधारणा को परिभाषित कर सकेंगे
- भारतीय समाज की नृजातविज्ञानी छवि की प्रकृति पर चर्चा कर सकेंगे
- भारतीय समाज की नृजातविज्ञानी छवि के मापदण्ड़ों का वर्णन कर सकेंगे
- विविधता में एकता, ग्रामीण भारत, जाति, जनजाति और धर्म का चित्रण कर सकेंगे
- भारत में लघु और वृहत परम्पाराओं की विशेषताओं की पहचान कर सकेंगे

4.1 प्रस्ताव

यहॉ छवि का विचार आवश्यक रूप से कुछ दृश्य, एक तस्वीर, एक कैमरे, दूरवीन, सूक्ष्मदर्षी या अन्य उपकरणों द्वारा बनायी गयी या एक कम्प्यूटर या विड़ियों पर्दे पर दिखायी गयी फिल्म या एक ज्यामितीय रेखाचित्र या एक मानचित्र से संबंधित नहीं है। आकड़ा संग्रह का दूसरा प्रकार वह 'छवि' का है। छवि वह अभियान है जो एक व्यक्ति एक वस्तु या मानसिक सृजन पर रखता है। भौतिक जगत के बारे में एक छवि विशिष्ट व्यक्ति के दृष्टिकोण द्वारा बन सकती है जो मुख्य रूप से उस व्यक्ति के भूतकाल या महसूस किये गये अनुभवों पर आधारित होती है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति एक उपन्यास को पढ़ने के बाद उसकी एक छवि बना सकता है। ठीक इसी तरह, क्षेत्र से कोई भी यह बताने की स्थिति में है कि किस तरह से परिवार में लडकी के जन्म को मिजोरम में (स्वागत) और मध्य प्रदेश में (बोझ)

* यह इकाई रबीन्द्र कुमार मोहंती द्वारा लिखी गई है।

देखा जाता है। छवि का विचार नृजातविज्ञानशास्त्रियों के लिए आकडों के संग्रहण का मुख्य साधन है जो क्षेत्र का एक समग्र सांस्कृतिक चित्रण और विषय, जो प्रतिभागियों के विचारों (Etic-व्यवस्थापरक) को शामिल करते है, को प्रस्तुत करता है। यह समूह की आवश्यकताओं पर आधारित कार्यवाई करने योग्य परिवर्तनों को भी समेकित कर सकता है।

छवि के विचार का मानसिक सृजन या वर्णनात्मक श्रेणी की तरह वर्णन करने के बाद, इस इकाई का पहला भाग नृजातविज्ञानी छवि अपने आप में और भारतीय समाज की नृजातविज्ञानी छवि जैसी अवधारणाओं को संबोधित करता है। भारतीय समाज के मापदण्ड़ों को सूचीबद्व करते हुए अगला भाग भारत की विविधता में एकता, ग्रामीण भारत, जाति, जनजाति और धर्म के आधारभूत चित्रण से संबंधित है। अंत से पहले वाला भाग भारत में लघु और वृहत परम्पराओं की विशेषताओं की पहचान करता है और इकाई सारांश के साथ समाप्त होती है।

4.2 नृजातविज्ञानी छवि

'नृजातविज्ञानी छवि' पद्वति संबंधी ढ़ॉचे को संदर्भित करती है जो जनसंख्या, संस्कृति, समुदायों, उनके नृजातीय समूहों के निर्माण और निवास स्थान की विशेषताओं का एक गहन चित्रण है। नृजातविज्ञानकर्ता के अपने दृष्टिकोण से एक समूह की संस्कृति के प्रलेखन की प्रक्रिया है। नृजातविज्ञान, मानव समाजों और संस्कृतियों पर अनुभविक आकड़ों की प्रस्तुति के रूप में, प्रकृति में अन्तर्विशयक है जो अपनी ही परतों के भीतर सामाजिक और मानव विज्ञान की सांस्कृतिक शाखाओं, संस्कृति अध्ययनों, समाजशास्त्र, संचार विषयक अध्ययनों, सामाजिक कार्य, शिक्षा, लोक साहित्य, धार्मिक अध्ययनों, भूगोल, अपराधशास्त्र, इतिहास और संग्रहालय विज्ञान में समाहित है।

नृजातविज्ञानी छवि एक प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति या प्रमाणिक प्रभाव है जिसको एक व्यक्ति, एक समुदाय या संस्कृति, संगठन या उत्पाद अपनी शानदार विशेषताओं के बारे में जनता के सामने प्रस्तुत करता है। छवि का विचार कल्पना पर निर्भर करता है जिसका उपयोग और प्रयोग समूहों के विचारो के प्रतिमानों (पैटर्न) और भाषा द्वारा प्रदर्शित विश्वासों या दूसरी क्रियाओं पर प्रतिबिम्बित होता है और कैसे वे अपने समूहों में व्यवहार करते है जैसा कि उनकी क्रियाओं द्वारा प्रदर्शित होता है जिसको अनुसंधानकर्ता ने देखा है। छवि एक व्यक्ति के एक एकल इकाई के रूप में परिप्रेक्ष्य, अनुभवों और प्रभावों को प्रदर्शित करती है और इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति अध्ययन के तहत समूह में इस छवि को प्रदर्शित करता है। आकड़ों का विश्लेषण मानवीय क्रियाओं के प्रकार्यो और अर्थो की व्याख्या को शामिल करता है। नृजातविज्ञान के दो प्रसिद्व स्वरूप है- यथार्थवादी नृजातविज्ञान और आलोचनात्मक नृजातविज्ञान, जिनको शैक्षिक संवाद में समाज की वर्तमान समझ, संस्कृति, इतिहास, परम्पराओं और नृजातीय विभिन्नताओं को सुधारने के प्रयास में लाया गया है।

नृजातविज्ञानी अनुसंधान का विस्तार यथार्थवादी परिप्रेक्ष्य जिसमें व्यवहार को देखा जाता है, से रचनावादी परिप्रेक्ष्य, जहॉ पर समझ सामाजिक रूप से अनुसंधानकर्ता और विषय वस्तुओं द्वारा बनती है, तक हो सकता है। अनुसंधान का विस्तार निश्चित, अवलोनीय व्यवहार के वस्तुनिष्ठात्मक लेखे से व्याख्यात्मक वर्णन, जो ''सामाजिक संरचना और व्यक्तिगत इकाई की परस्पर क्रिया'' की व्याख्या करता है, तक हो सकता है (शुट्ज, 2009: 117)। आलोचनात्मक सिद्वांत अनुसंधानकर्ता ''शोधकर्ता/अनुसंधानकर्ता-षोधित संबंधो के बीच शक्ति के मुददे तथा शक्ति और ज्ञान के बीच संबंध'' को संबोधित करते है।

4.3 भारत की नृजातविज्ञानी छवि

भारत की नृजातविज्ञानी छवि का आरम्भिक वर्णन 'भारत के लोग' परियोजना में मिलता है जिसको ब्रिटिश भारत द्वारा समाज, संस्कृति, जाति, जनजाति और भारतीय लोक-साहित्य के अध्ययन के लिए शुरू किया गया था। ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के दो सक्षम अधिकारियों जॉन फोर्ब्स वाट्सन और जॉन विलियम केय, जो मानवशास्त्र में प्रशिक्षित थे, ने आठ-संस्करणों के अध्ययन को, जिसका शीर्षक *'भारत के लोग' था, 1868 से 1875* के बीच संग्रहित किया, इसमें भारत की मूल जातियों और जनजातियों की 468 टिप्पणी की गई तस्वीरे थी। परियोजना का उद्भव लार्ड कैनिन, तत्कालीन भारत के गर्वनर-जनरल, की इच्छा में मिलता है, जिनका तस्वीरों को इकट्ठा करने का विचार अपने और अपनी पत्नी की व्यक्तिगत मानसिक उन्नति के लिए था (मेटकॉफ, 1997:117)।

इस परियोजना का मुख्य उद्देश्य लोगों के विश्वासों और प्रथाओं की पूरी समझ विकसित करना था जिनके वे युक्तिपूर्ण नियंत्रण के साथ प्रबंधक थे। इस प्रकार, यह ''विशिष्ट'' भौतिक गुणों, परिधानों और संक्षिप्त लेख के साथ मूल निवासियों की जिन्दगी के दूसरे पहलूओं से संबंधित प्रत्येक समुदाय की ''आवश्यक विशेषताएं'' क्या होनी चाहिए थी, का एक प्रकट प्रलेखन था।

1908 में हरबर्ट रिजले, 1901 की भारत की जनगणना के जनगणना कमिश्नर, ने इसी परियोजना को आगे बढ़ाया और एक दूसरे नए संस्करण 'भारत के लोग' के साथ आये जिसमें भारत की प्रजाति, जाति और जनजाति पर 25 दृश्यंत थे।

बहुत से भारतीय बुद्विजीवी वर्ग उस सामान्य रूख और परिणाम से अप्रभावित थे जो उनके लोगो को अनुचित और उदासीन दोनों तरह से दर्शाया। इस तरह का अन्तिम कार्य ब्रिटिश नृजातविज्ञानियों और प्रशासकों में जे.एच.हट्टन द्वारा *'भारत में जाति'* (कास्ट इन इण्डिया) के रूप में 1944 में प्रकाशित किया गया था।

विभिन्न राष्ट्रीय परम्पराओं चाहे अमेरिकी, भारतीय, फ्रांसिसी या ब्रिटिश मानवविज्ञान शास्त्रियों के साथ-साथ राष्ट्रीय परम्पराओं की आन्तरिक विविधता के योगदान ने भारत की नृजातविज्ञानी छवि पर प्रभावों के बहुदिशात्मक आदान-प्रदान का नेतृत्व किया है। भारत की पश्चिमी और भारतीय दोनों नृजातविज्ञानी छवि कुछ क्षेत्रों पर समान रूप से बल देती हैः

क) विविधता में एकता

ख) ग्रामीण भारत

ग) जाति

घ) जनजाति

ड) धर्म

च) लघु और वृहत परम्पराएं

4.4 विविधता में एकता

भारत की विविधता में एकता को विभिन्न प्रकार से चित्रित किया गया है। कश्मीर से कन्याकुमारी तक भारत एक है। भारतीय समाज विविधता में एकता के मामले में सबसे अच्छा उदाहरण है।

भारत विभिन्न सांस्कृतिक अभ्यासों, प्रजातियों, नृजातीय समूहों, वातावरण, धर्मो, क्षेत्रों और परम्पराओं का जीवंत एकीकरण है। प्रचीन भारतीय संस्कृति प्रतीकों और अनुष्ठानों की अनन्त विविधता का प्रतिनिधित्व करती है। प्राचीन भारत में ललित कलाओं का महत्व था। ऐसा कहा जाता है कि भारत मानव प्रजाति का पालना, मनुष्य की भाषा का जन्म स्थान, इतिहास की जननी, और परम्परा का लालन-पालन करने वाला है। भारतीय संस्कृति मानवता, सहिष्णुता, एकता, वैश्विक भाईचारे, धर्मनिरपेक्षवाद और सुसंबद्व सामाजिक व्यवस्था के सिद्वांत में विश्वास करती है। भारतीयों ने अपनी नम्रता और सादगी को मुस्लिम विजेताओं की आक्रमकता और ब्रिटिशों, पुर्तगालियों और डचों के सुधारात्मक जोश के बावजूद कायम रखा है। भारतीय अपनी मानवता और निर्मल प्रकृति में बिना आदर्शो और तीव्र सिद्वांतो के कारण विशिष्ट है। बहुत सी जातियों, धर्मो, प्रजातियों, भाषाओं, धर्मिक और रंग संबंधी विविधताओं के बावजूद भारतीय समाज ने अपनी एकता कायम रखी है।

4.5 ग्रामीण भारत

मैकियम मैरियट की *'ग्रामीण भारत'* (Village India) नामक पुस्तक-अपनी जुडवा श्रीनिवास द्वारा लिखित 'भारत के गॉव' (India's village) की तरह (दोनों 1955 में प्रकाशित हुई)- उनके नृजातविज्ञानी प्रयासों के पहले परिणामों को प्रस्तुत करती है। मेरियट का अध्ययन भारतीय ''सभ्यता'' को आधारभूत अनुभविक परिप्रेक्ष्य से स्थापित करता है। श्रीनिवास का ग्रमीण भारत में योगदान 'सामाजिक संरचना' के वर्णन का एक उत्कृश्ट उदाहरण है। वह रामपुरा, अपने अध्ययन के गॉव के लिए उपनाम, को एक 'सु-व्यवस्थित संरचनात्मक इकाई' की तरह मानते है और निरीक्षण करते है कि कैसे स्थानीय जातियॉ, एक तरफ तो, सहयोग के नियम द्वारा विभाजित है और, दूसरी तरफ, व्यवसायिक विशेषीकरण व संरक्षक-ग्राहक संबंधों के द्वारा अन्योन्याश्रित थे। उनके विचार में, प्रभुजाति गॉव का एक समग्र की तरह एकीकरण करने का कार्य करती है।

ग्रामीण भारत की नृजातविज्ञानी छवि विवादास्पद के आयामों को भी प्रदर्शित करती है। कैथलीन गॉफ ने अपने गॉव को ''सु-व्यवास्थित संरचनात्मक इकाई'' की तरह नहीं देखा है। उसने भीषण आर्थिक परिवर्तनो के प्रचण्ड सामाजिक परिणामों को महसूस किया जैसे ग्रामीण स्तर पर संबंधता घट रही है और जातियों के बीच में प्रतिद्वंद्विता बढ़ रही है, खासतौर पर कुम्बपटटई में ब्राह्मणवादी प्रभुत्व का विवाद, जो तमिलनाडू के तंजौर जिले का एक गॉव है। ठीक इसी प्रकार, आंद्रे बेते, गेराल्ड डी.वेरमन, जोआन मेन्चर और फ्रेडिरिक जी.बेली मुख्य रूप से ग्रामीण भारत में शक्ति और प्रभुत्व के प्रश्नों से संबंधित थैं।

मण्डेलनॉम (1972) ने लिखा है, ''एक गॉव सुव्यवस्थित ढ़ग से पृथक होने वाला सामाजिक और मानसिक पुलिन्दा नही है परन्तु फिर भी यह आधारभूत सामाजिक इकाई है।'' फ्रांसिसी समाजशास्त्री लुई ड्युमो ने भारतीय समुदाय शब्द के लिए तीन अर्थो को दिया है- एक राजनीतिक समाज कि तरह, जमीन के सह-स्वामी की एक संस्था की तरह और परम्परागत अर्थव्यवस्था और राजनीतिक के प्रतीक की तरह, तथा भारतीय देशभक्ति के प्रतीक की तरह। इस प्रकार इस विचार के अनुसार भारत में ग्रामीण समुदाय भारत की राजनीति और अर्थव्यवस्था का हिस्सा रहा है। एक गॉव एक स्थान से बहुत अधिक होने के साथ-साथ घरों, गलियों और खेतों के संग्रह मात्र से भी अधिक है।

गतिविधि 1

जिस गॉव या स्थान से आप संबंधित है उसका एक सामाजिक मानचित्र, आधारभूत सुविधाओं और इलाके में उपलब्ध मूल सेवाओं को दर्शाने के लिए बनाइए पिछले 10 वर्षो के दौरान वहॉ पर किस प्रकार के परिवर्तन महसूस किए गये है इससे संबंधित एक संक्षिप्त नृजातविज्ञानी विवरण भी दीजिए इसको अपने सहपाठियों के साथ सांझा कीजिए।

19वीं सदी की शुरुआत में, ब्रिटिश प्रशासकों ने भारतीय गॉवो को 'लघु गणतंत्र' की तरह वर्णित किया था। उनका मत था कि भारतीय गॉवों में सरकार का साधारण स्वरूप है और वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर इकाई है। भारत के गॉवों को उत्थान का एक हिस्सा राजा को देना होता था और अपने युवाओं को युद्वों में लड़ने के लिए भेजना पड़ता था। ब्रिटिश प्रशासकों के अनुसार इन दो प्रतिबंधों के अलावा, भारतीय गॉवो का राजनीतिक सत्ता के उच्च स्तर पर कोई हस्तक्षेप नहीं था और उन्हें इससे कोई मतलब नहीं था कि कौन उन पर शासन कर रहा है। एक आदर्श कथन, जो अक्सर छपता है कि भारतीय गॉव अखण्ड, सत्वात्मा, अपरिवर्तित इकाई की तरह है, सर चार्ल्स मेटकॉफ के एक प्रतिवेदन से है, वे भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना करने वाले प्रशासको मे एक थे। पक्तियों की शुरुआत कुछ ऐसे होती है, ''ग्रामीण समुदाय लघु गणंतंत्र है, जिनके पास वो सारी चीजें है जो उन्हे अपने लिए चाहिए और किसी भी बाहरी संबंध से लगभग स्वतंत्र है। ''यह बताता है कि युद्व इसके ऊपर से गुजरे है, हुकूमत आयी और गयी है, परन्तु गॉव एक समाज की तरह हमेशा अपरिवर्तित स्थिर और आत्मनिर्भर प्रकट हुए है।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित वाक्यों को सही या गलत बताइये/प्रत्येक वाक्य के सामने सही (√) या गलत (×) का चिन्ह लगाये।

   क) छवि वह अभियान है जो एक व्यक्ति एक वस्तु या मानसिक सृजन पर रखता है।

   ख) नृजातविज्ञानी आकड़ों पर अनुसंधानकर्ता के विचारों को व्यवस्थापरक (Emic) विचार कहते है।

   ग) भारत की पश्चिमी और भारतीय दोनों नृजातविज्ञानी छवि विविधता में एकता को दबाव के एक क्षेत्र की तरह समान रूप से रखती है।

   घ) भारत में ग्रामीण अध्ययनों के इतिहास में 1955 का वर्ष एक मील का पत्थर है।

2) वे कौन से तीन अर्थ है जिन्हे लुई डयूमा ने भारतीय समुदाय शब्द के साथ जोड़ा है? तीन अर्थ है-

   क) .....

   ख) .....

   ग) .....

4.6 जाति

भारतीय समाज विभिन्न समाजिक व्यवस्थाओं और उप-व्यवस्थाओं से बना हुआ है जैसे परिवार, जाति व गॉव और विभिन्न ''भूमिकाएँ'' जो कर्ता इन व्यवस्थाओं में रखते है, जिनको व्यवहारिक संबंध में विभिन्न व्यक्तियों और समूहों के बीच अन्तक्रियाओं के रूप में समझा जा सकता है। कुछ नृजातविज्ञानशास्त्रियों ने जाति पर ध्यान केन्द्रित किया था क्योकि वे विश्वास करते थे कि जाति को समझना लोगों को समझना या और इस प्रकार भारत को समझना था। जाति सामाजिक व्यवस्था की मुख्य आधार है। जातिगत प्रतिष्ठा/श्रेणी को ''स्तरीकरण'' का एक चरम स्वरूप माना गया है और ''व्यापक असमानता'' को जाति व्यवस्था की मुख्य विशेषता की तरह दर्शाया गया है जैसा कि डेविड जी.मण्डेलबॉम द्वारा देखा गया है। लुई ड्युमॉ के लिए, इसके विपरीत, जाति मुख्य रूप से एक प्रकट वास्तविकता नहीं अपितु एक ''मानसिक अवस्था'' है। इसका तात्पर्य है कि जाति की व्याख्या केवल सामाजिक संरचना के एक विशेष प्रकार की तरह या सामाजिक व्यवहार के एक विशेष प्रकार की तरह से नहीं बल्कि मुख्य रूप से विचारों और मूल्यों के संदर्भ में की जा सकती है।

ऐसी हजारों जातियॉ है और हर एक के अपने अलग नियम, प्रथाएँ, और सरकार के स्वरूप है। वर्ण शब्द (शाब्दिक अर्थ रंग) प्राचीन और कुछ हद तक हिन्दू समाज के आदर्श चतुर्विध विभाजन का उल्लेख करता हैः (1) ब्राह्मण - पुजारी और विद्वान वर्ग; (2) क्षत्रिय- योद्धा और शासक; (3) वैश्य- किसान और व्यापारी; और (4) शुद्र- कृषक और मजदूर/शुद्रों की श्रेणी से नीचे अछूत या पंचम (अर्थात् ''पॉचवा विभाजन'') थे, जो सबसे तुच्छ कार्यो को करते थे।

मैरियट (1955) ने किशनगढ़ी में अन्तर्जातीय लेन देन को 24 समूहों (जातियों) के बीच एक क्रीड़ायुद्व की तरह देखा है जो इस ग्रामीण समाज को बनाता है। इस क्रीड़ायुद्व में कर्ता का उद्देश्य ''दूसरों को खिलाकर या दूसरों पर निर्भरता दिखाने के लिए उनके द्वारा पोषण'' प्रभुत्व प्राप्त करना है।

एम.एन. श्रीनिवास (1955) ने भी जाति में कठोरता के प्रश्न पर विचार - विमर्श किया है। दक्षिण भारत के कुर्गो के एक नृजातविज्ञानी अध्ययन में, उन्होने पाया कि उनके जाति पदानुक्रमों में काफी हद तक गतिशीलता और लचीलापन है। उन्होने इस बात पर जोर दिया कि जाति व्यवस्था उस एक कठोर व्यवस्था से बहुत दूर है जिसमे प्रत्येक घटक जाति की स्थिति हमेशा के लिए निश्चित होती है; इसके बजाय, गतिविधि हमेशा संभव रही है, खास तौर पर पदानुक्रम के मध्य भाग में। जिन समूहों का जन्म नीची जाति में हुआ था उनके लिए यह हमेशा संभव था कि वे 'शाकाहार' और 'नशीले पदार्थो के त्याग' को अपनाकर अर्थात ऊॅची जाति की परम्पराओं को अपनाकर ऊॅची स्थिति तक उठ सकते थे। संस्कृतिकरण की अवधारणा या नीची जाति द्वारा ऊॅची जाति के आदर्शो को अपनाना, जाति संबंधों की जटिलता और प्रवाहिता को संबोधित करती है।

मैक्स मूलर (1860), एक जर्मन भारतविद्याशास्त्री, ने लिखा है, ''पूरी जाति व्यवस्था, जैसा कि हम इसको देखते है, ब्राह्मणवादी उत्पति के अचूक सबूत रखती है। ''मूलर ने बताया है कि ब्राह्मण जाति व्यवस्था के प्रबलतम समर्थक रहे है। उन्होने हिन्दू समाज में व्यापक विभाजन पैदा किये है। बहिष्कार और समावेश या पृथकता या अस्वीकृति के नियम जन्म और अन्तर्विवाह पर आधारित है जिसके पणिामस्वरूप जात समूहों, व्यवसायिक भूमिकाओं और रिति-रिवाजों का विविधीकरण होता हैं।

एम.वी.केतकर (1979) मानते है कि वंशानुगत सदस्यता और अन्तर्विवाह, संबंधों की जैविक संरचना की तरह, जाति के आधार है। यहॉ पर जाति की जैविक प्रकृति से तात्पर्य विभिन्न जाति समूहों के बीच संबंधों के सामजस्य से है। ईमाइल सेनार्ट लिखते हैः ''एक जाति व्यवस्था तो है जहॉ एक समाज विभिन्न आत्म निहित और पूर्ण पृथक इकाईयों में विभाजित होता है, उनके बीच के परस्पर संबंध व्यावहारिक रूप से एक श्रेणीबद्व पैमाने में निर्धारित किये जाते है''।

के. एल. शर्मा (1980) का विचार है कि जाति कभी भी एक स्थिर व्यवस्था नहीं है। हजारों जातियों व उप-जातियों और जाति के अन्दर और अधिक कुलों व उप-कुलों की व्यापकता विविधिकरण, पृथक्करण और जाति व्यवस्था में परिवर्तन का एक प्रमाण है। अन्तर्जातीय तथा मिश्रित विवाहों, प्रवसन, व्यवसायों में परिवर्तन, बौद्व आन्दोलन, इस्लाम के प्रभाव, अंग्रेजों के प्रभाव तथा दूसरे अन्य कारको ने जाति को न केवल अनुकुलक बल्कि सामजिक संबंधो का जीवित प्रतीक बना दिया है।

4.7 जनजाति

भारत दुनिया में गर्व से सबसे बडी आदिवासी/जनजातीय आबादी कहला सकता है। भारत के ज्यादातर जनजातिय लोग पहाड़ी या वनीय क्षेत्र में रहते है जहॉ जनसंख्या बहुत विरल है और संचार बड़ा मुश्किल है। वे हिमालय की उच्च घाटियों से लेकर भारत के सुदूर दक्षिण तक पायी जाती है। मुख्य जनजातीय क्षेत्र देश के विस्तृत केन्द्रीय पहाड़ी इलाकों के पूर्व में पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा और बिहार व मध्य भारत से लेकर पश्चिम में राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र के ऊॅचे इलाकों तक है। हॉलाकि पूरे भारत में फैले आदिवासी लोगों में बहुत सामाजिक और सांस्कृतिक अंतर है, जनजातियों के मुख्य व्यवसाय हैः

1) झूम (स्थांनातारित) कृषि;
2) वानिकी और शिकार द्वारा खाद्य संग्रहण;
3) स्थायी कृषि;
4) कृषि श्रमिक;
5) पशुपालन; और
6) घरेलू उद्योग।

डी.जी. मण्डेलबॉम (1972) ने भारतीय जनजातियों की निम्नलिखित विशेषताओं को उजागर किया हैः (1) नातेदारी सामाजिक संबंध/जुडाव के साधन के रूप में; (2) लोगो और समूहों (कुल और वंष) के बीच पदनुक्रम (कठोर प्रस्थिति भेद) का आभाव; (3) शक्तिशाली और औपचारिक संगठनों की अनुपस्थिति; (4) जोत/भूमि धारण का साम्यवादी आधार; (5) खण्डात्मक चरित्र; (6) अतिरिक्त भाग के संग्रहण, पूंजी के प्रयोग और बाजार व्यापार का कम महत्व; (7) धर्म के स्वरूपों और तत्वों में अंतर का आभाव; (8) जीवन का आनन्द लेने के लिए एक अलग मनोवैज्ञानिक कल्पना।

जनजातीय लोग सुदृढ़ पहचान की एक भावना से जुडे होते है। भाषा, नातेदारी, जादुई अनुष्ठान और क्रियाऍ, आवास के स्वरूप, खाने की आदतें और जीवन के तरीकें जनजातीय जीवन के विशिष्ट लक्षण है। नातेदारी, जनजातीय समुदायों में लोगों के मुख्य सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन को संचालित करती है। जनजातीय जीवन में पूरे समाज के लिए मुख्य कड़ी नातेदारी पर आधारित होती है। नातेदार की तरह से व्यक्तिगत

समानता को माना जाता है, पुरुषों के बीच निर्भरता और समन्वय कम से कम है। पितृपक्ष संबंधो द्वारा आधार-भूत जाल बनाया जाता है, विवाह संबंधी रिश्ते की महत्व कम होती है। जनजातीय समाज आकार में छोटे होते है वे अपने सामाजिक संबंधों के अनुरूप नैतिकता, धर्म और स्वयं का दुनिया का नज़रिया रखते है।

बी.के.रॉय बर्मन (1972) ने एतिहासिक, नृजातीय और सामाजिक सांस्कृतिक संबंधों को ध्यान में रखते हुए जनजातीय समुदायों को पाँच क्षेत्रीय समूहों में विभाजित किया है। जो निम्न प्रकार के है:

1) उत्तर-पूर्व भारत, जिसमें असम, अरूणाचल प्रदेश, नागालैण्ड, माणिपुर और त्रिपुरा शामिल है;

2) उत्तर का उप-हिमालय क्षेत्र तथा उत्तर-पश्चिम भारत, इसमें उत्तर प्रदेश के पहाड़ी जिले और हिमाचल प्रदेश शामिल है;

3) मध्य और पुर्व भारत, इसमें पाष्चिमी बंगाल, बिहार (अब झारखण्ड), उड़ीसा, मध्य प्रदेश (अब छत्तीसगढ़) और आंध्र प्रदेश शामिल है;

4) दक्षिण भारत, इसमें तमिलनाडु, केरल और कर्नाटक शामिल है;

5) पश्चिमी भारत, इसमें राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र शामिल है।

भारत में अनुसुचित जनजातियों (भारत के संविधान का अनुच्छेद 342) को आदिवासियों (मूल निवासियों) की तरह प्रस्तुत किया गया है जो भारत के मध्य, उत्तरपूर्व और दक्षिण क्षेत्रों में फैली हुई है। ये विभिन्न जनजातियों भारत में लगभग 1500 ई.पू. आर्यो के आने से बहुत पहले से रह रही है। आर्यो और उसके बाद मुस्लिमों और ब्रिटिशों के आने के बाद भी हॉलाकि जनजातीय लोग सामाजिक और भौगोलिक रूप से पृथक थे। छःसौ पचास से ज्यादा जनजातियॉ जो अनुसूचित जनजातियों को बनाती है भाषाओं की बहुलता को बोलती है। वे धार्मिक रूप से भी विविध है, कुछ जीवत्मा को मानते है तो दूसरो ने हिन्दू, इस्लाम या ईसाई धर्मो को अपना रखा है। ज्यादातर जन जातियों की सामाजिक परम्पराओं ने उनको देश की मुख्य धारा हिन्दू जनसंख्या से बाहर खडा कर रखा है।

भौगोलिक और सामाजिक रूप से पृथक होने के साथ-साथ जनजातीय समूहों को ऐतिहासिक और राजनीतिक रूप में कम आंका गया है। उनके निवास स्थान के क्षेत्र भी आर्थिक रूप से अविकसित है। भारतीय संविधान के अन्तर्गत अनुसूचित जनजाति प्रस्थिति के लिए राजनीतिक संस्थानों, जैसे, संसद, के साथ-साथ लोक सेवा और शैक्षणिक संस्थानों में नौकरी आरक्षण के लिए आरक्षित पदों को नामित किया है। भारत की कुछ महत्वपूर्ण अनुसूचित जनजातियों में शामिल है: अंड़मानी, बोडो, भील, चकमा, गुजरात की धोडिया जनजाति, गोंड, खासी, लक्षद्वीप के आदिम लोग, कुरीचिया, कुरूम्बर, त्रिपुरी, मिजो, मुडरी, नागा, निकोबारी, ओरान, संथाल, टोड़ा, गुजरात के मलधारी चोलानेककन, वर्ली, किसान जनजाति, डोंगरिया, कोंध, बोंड़ा, कुटिया, कोंध और बिषापूस।

बोध प्रश्न 2

1) कैसे मण्डेलबॉम और ड्यूमॉ भारत में जाति पर अपने विचारों के संबंध में अलग है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारत में जनजातियों के किन्ही तीन मुख्य व्यवसायों के नाम बताइए।

क) .....

ख) .....

ग) .....

4.8 धर्म

सदियो से धार्मिक विविधता भारतीय जनसंख्या को परिभाषित करने वाली विशेषता रही है। देश का कोई औपचारिक राज्य धर्म नही है, परन्तु धर्म भारतीय दैनिक जीवन में मुख्य भूमिका निभाता है। इस प्रकार, भारत की विविधता में एकता धार्मिक क्षेत्र में भी देखने को मिलती है। भारत के प्रमुख धर्म है- हिन्दू धर्म (सबसे बड़ा धर्म), इस्लाम, सिख धर्म, ईसाई धर्म, बौद्व धर्म, जैन धर्म, पारसी धर्म, यहूदी धर्म और बहाई विश्वास। भारत एक ऐसा देश है जहॉ पर विभिन्न धर्म और संस्कृतियॉ सामंजस्य से रहते है। यह सामंजस्य उत्सवों/त्योहारों के मनाने मे दिखता है। भारत के सभी धर्म और संस्कृतियॉ प्रेम और भाईचारे के संदेश को प्रदर्शित करती है।

चाहे यह भक्तों की सभा, मस्जिद के ऑगन में प्रार्थना में झुकना, या दिपावली पर घरों को रोशन करने के लिए दिपों का संग्रह, क्रिसमस का अत्याधिक उत्साह, या बैशाखी का भाईचारा हो, भारत के धर्म साझी भावनाओं के उत्सव है जो लोगों को एक दूसरे के निकट लाते है। भारत के विभिन्न धर्मो और संस्कृतियों के लोग भाईचारे और आकर्षक व विविध भूमि में मेल-जोल के सामूहिक धागे बंधे है।

नृजातविज्ञानी स्तर पर, कुछ विद्वानों ने धर्म और शक्ति के बीच अन्तर्संबंधो को देखने की कोशिश की है। धार्मिक प्रस्थिति जैसा कि पवित्र/अपवित्र के विरोध में प्रदर्शित होती है, ड्यूमॉ के लिए भारतीय समाज का मुख्य मूल्य है और इसका वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण पुजारी द्वारा प्रतिनिधित्व होता है। इस विचारधारा के अन्दर, यह मूल्य अपने प्रतिवाद-शक्ति, जो राजा या क्षत्रिय वर्ण द्वारा प्रदर्शित होती है- के मात्र विरोध में नहीं होता है बल्कि यह उत्तरार्द्व/बाद वाले को सम्मिलित करता है। धर्म, पवित्र और ब्राह्मण इस प्रकार समाज को एक समग्र की तरह प्रदर्शित करते है। ड्यूमॉ के अनुसार जबकि विचारधारात्मक स्तर पर इस प्रकार धर्म हमेशा से महान होता है, परन्तु आनुभाविक स्तर पर इसका उल्टा भी हो सकता हैः राजा-शक्ति के संदर्भ में- भौतिक रूप से निर्भर ब्राह्मण पुजारी से महान होता है। श्रेष्ठतर पवित्रता के मूल्य को सम्मिलित करता है और ड्यूमॉ ने वर्ण व्यवस्था के अपने विश्लेषण से यह मुख्य तथ्य दिया कि धार्मिक प्रस्थिति (ब्राह्मण) और शाक्ति (राजा) के बीच में स्पष्ट अंतर है।

रंजीत गुहा (1987) ने धर्म की भूमिका पर अधीनस्थ संस्था को समझने के लिए बल दिया। गुहा के लिए, '' धार्मिकता सभी दृष्टियों से, 1855 के संथाल विद्रोहियों के लिए केन्द्रित थी। शक्ति की अवधारणा जिसने इसे प्रेरित किया, इस प्रकार के विचारो से बनी और इस प्रकार

के कार्यो व शब्दों में प्रदर्शित थी जैसे स्पष्ट रूप से वे चरित्र में धार्मिक थी। यह वो शक्ति नहीं सामग्री थी जो ऐसे स्वरूप में लिपटी थी जो इससे बाहर था यह धर्म कहलाता है। यह संभव नहीं है कि इस मामले में विद्रोह की बात करे धार्मिक चेतना को छोड़कर। भारत में पश्चिम और वस्तुतः पूरी आबादी की तुलना में धर्म को गंभीरता से लिया जाता है। भारत के धर्मो के अनुयायी ''समुदाय'' कहते है, बना लेते है, ये वो समूह है जो मोटे तौर पर एक दूसरे के साथ शक्तिपूर्वक तरीके से रहते है परन्तु अलग सामाजिक क्षेत्र में जीते और पूजा करते है। तदानुसार जब इन समूहों के बीच हिंसा होती है तो यह 'सांप्रदायिक' हिंसा कहलाती है। सांप्रदायिकता की अवधारणा पर बाद की इकाई में विचार -विमर्श करेगे।

4.9 लघु और वृहत परम्परा

मिलटन सिंगर और राबर्ट रेड़फील्ड (1955) ने लघु परम्परा और वृहत परम्परा की जुड़वा अवधारणाओं को विकसित किया जब मद्रास शहर, आज का चेन्नई शहर, में भारतीय सभ्यता का नियतविकासवादी अध्ययन कर रहे थे। परम्परा का तात्पर्य है सूचना, विश्वासों, रीति -रिवाजों को मौखिक रूप से आदर्शो/मिसालो के रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक कायम रखना। दूसरे शब्दों में, परम्परा विरासत में मिली प्रथा या विचार और समझौता है जो एक निश्चित अवधि के लिए सामाजिक समूह के साथ जुड़े होते है। यह लोगों की अभिवृतियों, स्थिर अन्तर्क्रिया प्रतिमानों और समाजिक-सांस्कृतिक संस्थाओं को भी सम्मिलित करती है। वृहत परम्परा अभिजनों, शिक्षितों और कुछ चिंतनशील लोगो के साथ संबंधित है जो सांस्कृतिक ज्ञान का विश्लेषण करने, व्याख्या करने और प्रतिबिंबित करने में समर्थ है। वृहत परम्परा ज्ञान का संग्रह है जो ज्ञान के प्रकाश स्तम्भ की रोशनी की तरह कार्य करती है। इसके विपरीत लघु परम्परा विश्वास प्रतिमानों, संस्थाओं, ज्ञान जिसमें कहावतें, पहेलियॉ, उपाख्यान, लोक कथाएँ, किंवदंतियॉ, मिथक और लोक के लोक साहित्य का समग्र संग्रह है और/या अनपढ़ कृषक जो वृहत परम्परा से सांस्कृतिक ज्ञान को आत्मसात करते है, को शामिल करती है। भारतीय सभ्यता की एकता लोक/कृषक और अभिजन या सांस्कृतिक प्रदर्शन और उनके सांस्कृतिक उपज के माध्यम से विद्वान लोग दोनो के विश्व विचार/परिप्रेक्ष्य की एकता के स्थानीयकरण को प्रदर्शित करती है। सांस्कृतिक प्रदर्शन का वृहत परम्परा और लघु परम्परा दोनों की संरचना के आस-पास संस्थाकरण होता है।

भारत में वृहत परम्परा के बहुत से केन्द्र है और वहॉ पर सामाजिक-सांस्कृतिक संबंधों को ताना बाना है। यह संबंध सांस्कृतिक ज्ञान और विचारधारा पर आधारित है। वृहत परम्परा और लघु परम्परा के सांस्कृतिक प्रदर्शन में अन्तर होता है। वृहत परम्परा का विचार क्षेत्र मौलिक या 'शास्त्रीय' भेद को प्रदर्शित करता है जबकि लघु परम्पराओं का दायरा लोक/कृषक और मौलिक ज्ञान तथा सांस्कृतिक प्रदर्शन के स्थानीय रूप है। वृहत परम्परा विभिन्न भूमिकाओं और प्रस्थितियों की महत्वपूर्ण व्यवस्थाओं को दृढ़ करती है जो इस प्रकार के संगठित निकायों में प्रदर्शित होते है। जैसे जाति, सम्प्रदाय, शिक्षक, पाठ करने वाले, अनुष्ठान मार्गदर्शक, पुजारी, सांस्कृतिक अभिनेता, धार्मिक उपदेशक आदि और ये सभी सांस्कृतिक ज्ञान के उपदेशक और नियमित प्रचार में व्यस्त रहती है। ज्ञान का भण्डार जो वे रखते है वह पौराणिक कथाओं और महाकाव्यों जैसी विभिन्न धार्मिक ग्रंथों पर आधारित है।

उनकी अपनी भूमिका लघु परम्परा को आश्रय देती हैः लोक कलाकार, लोक संगीतकार, कथा वाचक/कहानीकार, पहेलियों को बयान करने वाला, भिक्षुक कलाकार, पहेलियों और कहावतों का अनुवादक, गली का नर्तक, ज्योतिषी, भाग्य-वक्ता और जादूगर/ओझा/एक

गॉव में, प्राथमिक विद्यालय शिक्षक लघु परम्परा ज्ञान के संबंध में मुख्य व्यक्ति है। वह स्वयं विभिन्न सांस्कृतिक भूमिकाएँ निभाता है और गॉव के मुखियाओं के सहयोग से बहुत सी लोक अभिनय, पौराणिक नाटक, स्वांग, पवित्र वाणी का सस्वर पाठ, लोक संगीत के साथ प्रार्थना करना जिसके दो उद्देश्य हैः

1) भाक्तिमय गीतों को गाना और

2) मनोरंजन प्रदान करना।

इसमें पहली क्रिया एक पवित्र कर्तव्य है और दूसरा कार्य सांसारिक है अर्थात चिंता और तनाव से राहत पाने के लिए जो कभी-कभी कृषक द्वारा अपनाया जाता है।

दो परम्पराएँ बहुत पृथक जनजातियों में पहचानी नही जा सकती है। हम अंडमान द्वीपवासियों के विचार या धर्म के गुप्त पहलूओं के बारे में कुछ नहीं पाते है। एक बूढ़े व्यक्ति को पता हो सकता है क्या वहॉ अन्य रूप में जाना जाता है। जन साधारण और विशेषज्ञों के बीच धर्म की समझ में अंतर है। एक आदिम जनजाति में इस तरह का विरोधाभास वृहत परम्परा और लघु परम्परा के बीच के अंतर के समान है जो क्रमशः सभ्यता और कृषक समाज के संबंध में है। लोक या जनजातीय समाज कृषक समाज के आदि-आयाम तैयार करता है।

मैरियट ने जोर दिया है कि उत्तर भारतीय संदर्भ में, महान सांस्कृतिक परम्परा को एक 'स्वदेशी सभ्यता' की तरह देखा जा सकता है; अर्थात् सांस्कृतिक स्वरूपों का एक संग्रह जिसका विस्तार नियतविकासीय रीति में विचारों के स्थानीय समुच्चय से हुआ हो। वृहत परम्परा हिन्दूवाद इस प्रकार एक मौलिक सभ्यता बनाता है जैसाकि अन्य महान परम्पराओं जैसे लैटिन अमेरिका में स्पेनिष कैथोलिक धर्म के विपरीत जो विदेशी आरोपण थे इनके बजाय यह स्वदेशी संस्कृति का नियतविकासीय परिणाम है। इस तरह की विविधतापूर्ण वृहत परम्पराओं के बावजूद स्वदेशी परम्पराओं के साथ एकीकरण या सहधर्मी ने 'द्वितीयक सभ्यताओं' को बना दिया था।

बोध प्रश्न 3

1) 'लघु परम्परा' और 'वृहत परम्परा' से क्या तात्पर्य है? एक वाक्य में उत्तर दीजिए।

   क) वृहत परम्परा .....

   .....

   ख) लघु परम्परा .....

   .....

   .....

2) भारतीय सभ्यता की एकता सबसे अच्छे से कैसे प्रतिबिम्बित होती है?

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

3) निम्नलिखित वाक्यों को सही या गलत बताइये/प्रत्येक वाक्य के सामने सही (√) या गलत (×) का चिन्ह लगाये।

क) लोक या जनजातीय समाज कृषक समाज के आदि-आयाम तैयार करता है।

ख) प्राथमिक विद्यालय शिक्षक द्वारा पौराणिक नाटको को आयोजित करना उसका पवित्र कर्तव्य है ना कि सांसारिक।

ग) अंडमान द्वीपवासियों के बीच हम विचार या धर्म के गुप्त पहलूओं के बारे में कुछ नहीं पाते है।

घ) भारत का कोई औपचारिक राज्य धर्म नहीं है।

4.10 सारांश

सबसे पहले, इस इकाई में, छवि के विचार को एक मानसिक सृजन या एक वर्णानात्मक श्रेणी के रूप में स्पष्ट किया गया था। इसके बाद नृजातविज्ञानी छवि और विशेष रूप से भारतीय समाज की नृजातविज्ञानी छवि जैसी अवधारणाओं को स्पष्ट किया गया। आगे भारतीय समाज की नृजातविज्ञानी छवि के मापदण्ड़ों जैसे विविधता में एकता, ग्रामीण भारत, जाति और धर्म पर विचार विमर्श किया गया। सारांश से पहले, उपांतिम भाग भारत में वृहत और लघु परम्पराओं की विशेषताओं की पहचान करता है।

4.11 संदर्भ

Bailey, F G.1960. Tribe, Caste and Nation. Manchester, Manchester University Press.

Bailey, F. G. 1969 "Structure and change in Indian society: A review article." Pacific Affairs 42 (4): 494–502

Cohn, Bernard S. 1955. "The changing status of a depressed caste." In Village India: Studies in the little community, edited by McKim Marriott, 53–77. Chicago: The University of Chicago Press.

Dirks, Nicholas B. 2001. Castes of mind: Colonialism and the making of modern India. Princeton: Princeton University Press.

Dirks, Nicholas B. 1990. "The original caste: Power, history, and hierarchy in South Asia." In India through Hindu categories, edited by McKim Marriott,59–77. New Delhi: Sage.

Dumont, Louis, and David F. Pocock. 1957. "Village studies." Contributions to Indian Sociology 1: 23–41.

Dumont, Louis. 1980. Homo hierarchicus: The caste system and its implications. Chicago: The University of Chicago Press.

Dumont, Louis.1970. Homo Hierarchicus: The Caste System and its Implication. London: Paladin.

Gandhi MK 1929 (1957) The Story of My Experiments with Truth, Beacon Press,

Guha, Ranajit. 1987. "Introduction." In An anthropologist among the historians and other essays, by Bernard S. Cohn, vii–xxvi. New Delhi: Oxford University Press.

Hutton J. H. 1946Caste in India, Cambridge, Cambridge University Press.

Madan, T. N. 1994. Pathways: Approaches to the study of society in India. NewDelhi: Oxford University Press.

Madan, T.N. (ed). 1992. Religion in India. New Delhi: OUP.

Mandelbaum, David G. 1970. Society in India. Berkeley: The University of California Press.

Metcalf, Thomas R. (1997). Ideologies of the Raj. Cambridge: Cambridge University Press.

Risley, Herbert Hope (1908). The People of India (1st ed.). Calcutta: Thacker, Spink & Co.; London: W. Thacker & Co.

Risley, Herbert Hope (1915). Crooke, William, ed. The People of India (2nd ed.). Calcutta & Simla: Thacker, Spink & Co.; London: W. Thacker & Co.

Schatz, Edward, ed. Political Ethnography: What Immersion Contributes to the Study of Power. University of Chicago Press. 2009.

Sharma, K.L 1980. Essays on Social Stratification. New Delhi: Rawat.

Srinivas MN 2000 Social Change in Modern India, Orient Longman, New Delhi.

Srinivas, M. N. 1955b. "The social system of a Mysore village." In Village India: Studies in the little community, edited by McKim Marriott, 1–35. Chicago: The University of Chicago Press.

4.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित वाक्यों को सही या गलत बताइए। प्रत्येक वाक्य के सामने सही (√) या गलत (×) का चिन्ह लगाइए।

   क) सही (√)

   ख) गलत (×)

   ग) सही (√)

   घ) सही (√)

2) वे कौन से तीन अर्थ है जिन्हे लुई ड्युमॉ ने भारतीय समुदाय शब्द के साथ जोड़ा है? तीन अर्थ है-

   क) एक राजनीतिक समाज की तरह

   ख) जमीन के सह-स्वामी की एक संस्था की तरह और परम्परागत अर्थव्यवस्था और राजनीति के प्रतीक की तरह

   ग) भारतीय देशभक्ति के प्रतीक की तरह

बोध प्रश्न 2

1) कैसे मण्डेलबॉम और ड्यूमॉ भारत में जाति पर अपने विचारों के संबंध में अलग है?

   जतिगत श्रेणी/प्रतिष्ठा को डेविड जी. मण्डेलबॉग द्वारा ''स्तरीकरण' का एक चरम

स्वरूप और ''व्यापक असमानता'' को जाति व्यवस्था की मुख्य विशेषता माना गया है। लुई ड्यूमॉ के लिए इसके विपरीत, जाति मुख्य रूप से एक प्रकट वास्तविकता नहीं अपितु एक ''मानसिक अवस्था'' है।

2) भारत में जनजातियों के किन्ही तीन मुख्य व्यवसायों के नाम बताइए।

क) झूम (स्थानांतरित) कृषि

ख) वानिकी और शिकार द्वारा खाद्य संग्रहण और

ग) कृषि श्रमिक और पशुपालन।

बोध प्रश्न 3

1) 'लघु परम्परा' और 'वृहत परम्परा' से क्या तात्पर्य है? एक वाक्य में उत्तर दीजिए।

क) वृहत परम्परा अभिजनों, शिक्षितों और कुछ चिंतनशील लोगों के साथ संबंधित है जो सांस्कृतिक ज्ञान का विश्लेषण करने, व्याख्या करने और प्रतिबिम्बित करने में समर्थ है।

ख) लघु परम्परा विश्वास प्रतिमानों, संस्थाओं, ज्ञान जिसमें कहावतें, पहेलियॉ, उपाख्यान, लोक कथाऍं, किंवदंतिया, मिथक और लोक के लोक साहित्य का समग्र संग्रह है और या अनपढ़ कृषक जो वृहत परम्परा से सांस्कृतिक ज्ञान को आत्मसात करते है, को शामिल करती है।

2) भारतीय सभ्यता की एकता सबसे अच्छे से कैसे प्रतिबिम्बित होती है? भारतीय सभ्यता की एकता लोक/कृषक और अभिजन या सांस्कृतिक प्रदर्शन और उनके सांस्कृतिक उपज के माध्यम से विद्वान लोग दोनों के विश्व विचार/प्ररिप्रेक्ष्य की एकता के स्थानीयकरण को प्रदर्शित करती है।सांस्कृतिक प्रदर्शन का वृहत परम्परा और लघु परम्परा दोनों की संरचना के आसपास संस्थाकरण होता है।

3) निम्नलिखित वाक्यों को सही या गलत बताइए। प्रत्येक वाक्य के सामने सही (√) या गलत (×) का चिन्ह लगाइए।

क) सही (√)

ख) गलत (×)

ग) सही (√)

घ) सही (√)

शब्दावली

वर्ण: सम्पूर्ण भारत में, वर्ण सामाजिक समूहों को चार श्रेणियों में बॉटता है। यह जाति समूहों के सामाजिक और अनुष्ठान पदानुक्रम का प्रतिमान (मॉडल) है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्ण है। वर्ण जाति व्यवस्था को सांस्कृतिक शैली प्रदान करता है।

जाति: एक आषेपित समूहीकरण जो समुदाय/समानता पर आधारित है।

वृहत परम्परा: सांस्कृतिक तत्व या परम्परा, जो लिखित है और समाज के अभिजन, जो शिक्षित और निपुण है, के द्वारा स्वीकृत है।

लघु परम्परा: सांस्कृतिक तत्व या परम्परा, जो मौखिक है और ग्रमीण स्तर पर संचालित है।

संस्कृतिकरणः एम.एन.श्रीनिवास ने सर्वप्रथम इस अवधारणा का प्रयोग समाजिक परिवर्तन की एक प्रक्रिया को दर्शाने के लिए किया था जिससे एक निम्न हिन्दू जाति या जनजाति उच्च जाति के रीति रिवाज, विचारधारा और जीवन के तरीकों को अपनी जाति प्रस्थिति को सुधारने के विचार से ग्रहण करते है।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

Bailey, F G.1960. Tribe, Caste and Nation. Manchester, Manchester University Press.

Dumont, Louis. 1980. Homo hierarchicus: The caste system and its implications. Chicago: The University of Chicago Press.

Guha, Ranajit. 1987. "Introduction." In An anthropologist among the historians and other essays, by Bernard S. Cohn, vii–xxvi. New Delhi: Oxford University Press.

Hutton J. H. 1946Caste in India, Cambridge, Cambridge University Press.

Mandelbaum, David G. 1970. Society in India. Berkeley: The University ofCalifornia Press.

Srinivas M N 2000 Social Change in Modern India, Orient Longman, New Delhi.

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 5 संवैधानिक आधार*

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 भारतीय संविधान : प्रक्रिया निर्माण

5.3 भारतीय संविधान : आधारभूत लक्षण

5.3.1 मुख्य आदर्श

5.3.2 मौलिक अधिकार एवं कर्तव्य

5.3.3 राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत

5.3.4 संघीयता, वयस्क मताधिकार एवं न्यायपालिका एवं सकारात्मक भेदभाव की नीति

5.4 सारांश

5.5 संदर्भ

5.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप सक्षम होंगे :

- भारत की एक संवैधानिक लोकतंत्र के रुप में पहचान करने में
- संविधान के निर्माण के इतिहास को बताने में
- स्वतंत्र भारत द्वारा ग्रहण किए गए संविधान के समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता जैसे विभिन्न पहलूओं की व्याख्या करने में
- मौलिक अधिकारों और कर्तव्यों, राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों, सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार आदि अवधारणाओं की व्याख्या करने में।

5.1 प्रस्तावना

जब हम एक आधुनिक राष्ट्र-राज्य के रुप भारत की में बात करते है तो संविधान को समझना अनिवार्य है जो विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका को बिना किसी बाधा के प्रतिदिन कार्य करने के लिए आधारभूत ढाँचा प्रदान करता है। भारतीय संविधान एक अत्यंत व्यापक दस्तावेज है जो आधुनिक भारतीय राज्य के कार्य और समृद्धि के लिए नींव रखता है। अंग्रेजों से आजादी पाने के बाद, अपनी परम्पराओं को ध्यान में रखते हुए भारत एक आधुनिक स्वरुप चाहता था। भातीय संप्रभुता के लिए आजादी के लंबे संघर्ष ने संविधान निर्माताओं को भारतीयों के लिए स्वतंत्रता या आजादी के महत्व के प्रति जागरूक कर दिया था। सभी भारतीयों के लिए समानता और भ्रातृत्व को सभी अनुच्छेदों में आत्मा में और सार रुप में एक आधारभूत सिद्धांत की तरह अपनाया गया (हाशिये पर विद्यमान (अधिकारहीन) लोगों को बाकी जनसंख्या के बराबर लाने के लिए कुछ भागों के आरक्षण के लिए अमेरिकी प्रारूप से सकारात्मक भेदभाव को अपनाया गया)।

* यह इकाई उज़मा अजहर द्वारा लिखी गई है।

5.2 भारतीय संविधान : निर्माण प्रक्रिया

26 जनवरी 1950 को, दुनिया का सबसे लम्बा लिखित संविधान, भारतीय संविधान अस्तित्व में आया। संविधान शासन के लिए आधार और ढांचा प्रदान करता है और विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका की संस्थाओं को भूमिका (कार्य) प्रदान करता है। यह एक ऐसा दस्तावेज भी है जो सामाजिक और आर्थिक न्याय का वादा करता है।

प्रस्तावना में, संविधान भारत को संप्रभु, समाजवादी, लोकतांत्रिक गणतंत्र के रुप में अपने सभी नागरिकों के लिए न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे को सुनिश्चित करने का दावा करता है। सभी कानूनों को संविधान के नियमों, कानून या अधिनियम के किसी प्रावधान के अनुरुप होना चाहिए। जो असंगत है वह अशक्त और अमान्य है।

संविधान एक आवश्यक दस्तावेज है जो अच्छे या रचनात्मक शासन के आधारभूत कार्यो का वर्णन करता है ; अपने नागरिकों के अधिकारों और हितों की रक्षा को सुनिश्चित करता है और जीवन के सभी क्षेत्रों में उनके कल्याण के लिए सरकार को निर्देश देता है कि नागरिकों को कैसे व्यवहार को करना चाहिए और सरकार के प्रति जिम्मेंदार होना चाहिए।

प्रस्तावना

प्रस्तावना संविधान का वह भाग है जो भारत के लोगों के आदर्शों और विचारों को परिभाषित करता हैं। यह उपरोक्त विचारधारा पर आधारित हमारे राष्ट्र-राज्य और सरकार के सामाजिक दर्शन को निर्धारित करता है। हमारे संविधान की प्रस्तावना इस प्रकार है :

"हम भारत के लोग, भारत को एक संप्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी धर्मनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता; प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्रदान करने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढाने के लिए दृढ संकल्प हो कर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिती मार्ग शीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत दो हजार छह विक्रमी) को एतद संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मर्पित करते है।".

अब हम देखते है कि कैसे संविधान अस्तित्व में आया, इसके बनने की प्रक्रिया क्या थी। यहाँ भारत सरकार अधिनियम 1935 को देखना महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि यह मूल दस्तावेजों के उन भाग का निर्माण करता है जो कि भारत के संविधान निर्माण में सम्मिलित विशेषज्ञों द्वारा परामर्श प्राप्त है।

भारत सरकार अधिनियम, 1935 एक ऐतिहासिक अधिनियम है जिसने आंदोलन को भारत की स्वतंत्रता के लिए अग्रणी स्व-शासन की ओर आगे बढ़ाया। औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा यह अधिनियम पहली बार भारत सरकार की संघीय व्यवस्था स्थापित करने के उद्देश्य से लाया गया, यह ब्रिटिश संसद द्वारा पारित अभी तक का सबसे अधिक जटिल दस्तावेज था जिसमें 451 धाराएँ और 15 अनुसूचियाँ थी। इसकी प्रमुख विशेषताएँ थी : (अ) अखिल भारतीय महासंघ ; (ब) प्रांतीय स्वायत्तता ; (स) केन्द्र में दोहरा शासन (द्विशासन) प्रबंध; और (द) संघीय न्यायालय।

संविधान के निर्माताओं ने एकता, सामाजिक क्रांति और लोकतंत्र के अन्त निर्भर लक्ष्य को एक साथ तलाशना (पाना) था और जिनका अलग-अलग रुप में अनुसरण या प्राप्त नहीं किया जा सकता है, जिसको ग्रेनविले ऑस्टिन ने समेकित (अखण्ड) बनावट (जाल) के तीन धागों (तिपाई) के रुप में संदर्भित किया है (ऑस्टिन, 2001, पृ.सं. ix-x) भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अलावा स्वतंत्रता-पूर्व काल के तीन महत्वपूर्ण दस्तावेजों ने संविधान के लिए रुपरेखा प्रदान किया वो थे :

i) **नेहरू प्रतिवेदन (1928)**

मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में सह-समिति द्वारा प्रस्तुत किया गया था। औपनिवेशिक शासकों को भारतीय नेताओं की क्षमता पर संदेह था, कि वे इस तरह का दस्तावेज प्रस्तुत नही कर सकते है। हालांकि, सह-समिति द्वारा इस उद्देश्य के लिए एक दस्तावेज प्रस्तुत कर दिया गया था, जिसको लखनऊ में हुए सर्वदल सम्मेलन (All Party Conference), 1928 द्वारा स्वीकृत कर लिया गया था (ऑस्टिन, 2001. पृ. 55)। अधिकारों के इस घोषणा-पत्र ने मुख्यतः यह घोषित किया कि भारतीय संविधान का मुख्य उद्देश्य भारतीयों के मौलिक अधिकारों को सुरक्षा और अल्पसंख्यकों के लिए कुछ संरक्षण प्रदान करना होगा। इस समय पर प्राप्त स्वतंत्रता एक ऐसा प्रभुत्व (नियंत्रण) था, जो ब्रिटिशों की सत्ता के अधीन ही कार्य करेगाा, और पूर्ण स्वतंत्रता नही होगी।

ii) **कराची प्रस्ताव (1931)**

कराची प्रस्ताव का मसौदा (आलेखन) तैयार करने का श्रेय पण्डित जवाहरलाल नेहरू को जाता है। मार्च 1931 में, कराची में आयोजित कांग्रेस वार्तालाप (सम्मेलन) ने आर्थिक व सामाजिक परिवर्तनों और मौलिक अधिकारों पर प्रस्ताव को अपनाया। यह अधिकारों की एक घोषणा और एक मानवतावादी, समाजवादी घोषणा-पत्र था। दस्तावेज के प्रावधान वास्तव में आध्यात्मिक (तर्कशील) बन गए और, कुछ मामलों में, नीति-निर्देशक सिद्धांतों के प्रत्यक्ष पूर्ववर्ती बन गए (ऑस्टिन 2001 :x)।

iii) **सप्रु प्रतिवेदन (1945)**

सप्रु प्रतिवेदन 1945 में प्रकाशित हुआ, यह समय साम्प्रदायिक तनावों और संघर्षों से घिरा हुआ था, यह प्रतिवेदन मुख्य रुप से अल्पसंख्यकों के भय की समस्या से संबंधित था जिसने राजनीतिक परिदृष्य को आच्छादित (ढक) रखा था। इस समय तक, यह स्पष्ट हो गया था कि निकट भविष्य में भारत अपनी स्वतंत्रता को प्राप्त कर लेगा और अल्पसंख्यकों को उनकी सुरक्षा के बारे में आश्वस्त करना होगा। सप्रु प्रतिवेदन ने घोषित किया कि नये संविधान के अंतर्गत मौलिक अधिकारों को अल्पसंख्यकों के लिए कुछ सुरक्षा उपायों को शामिल करना होगा। प्रतिवेदन में कहा गया है : 'जिसकी संविधान माँग और उम्मीद करता है वह राजनीतिक और नागरिक अधिकारों, स्वतंत्रता की समानता व धार्मिक पूजा की स्वतंत्रता के आनंद में सुरक्षा और जीवन के सामान्य अनुप्रयोग की तलाश के मामलों में समुदाय के एक भाग और दूसरे भाग के बीच पूर्ण समानता है' (सप्रु, 1945. पृ. 260)।

1947 के स्वतंत्रता अधिनियम (इंडिपेडेंस एक्ट) के द्वारा भारत ने 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता प्राप्त की और भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन खत्म हो गया। इसी अधिनियम ने संविधान सभा को भारत का संविधान बनाने के लिए शक्ति प्रदान की।

यह अधिनियम राजनीतिक स्वतंत्र के लिए उसे लम्बे संघर्ष का परिणाम था और भारत के संविधान के निर्माण के लिए संविधान सभा का गठन विधिपूर्ण तंत्र और अधिकार के रुप में सटीक पथ का पालन करने के लिए इसकी राजनीतिक संप्रभुता के लिए, नए राष्ट्र-राज्य के लिए हुआ।

हालाँकि, संविधान सभा की पहली बैठक 9 दिसम्बर, 1946 को हुई थी जैसा कि कैबिनेट मिशन के द्वारा इसके गठन का प्रावधान पहले से ही बनाया गया था। प्रारम्भ में इसके 207 सदस्य थे जिसमें 15 महिलाएं भी शामिल थी। संविधान प्रारूप समिति ने यह माना था कि पारम्परिक रुप से हाशिये (अधिकारहीन) पर स्थित वर्ग को सम्मिलित करना अत्यधिक महत्वपूर्ण है इस उद्देश्य को सुनिश्चित करने के लिए कि उनकी चिंताओं (मामलों) को संविधान में प्रतिबिंबित किया गया है। समिति राष्ट्रीय नेताओं जैसे डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, पण्डित जवाहरलाल नेहरू, मौलाना अब्दुल कलाम आजाद, डॉ. बी. आर. अम्बेडकर और दूसरे सदस्यों से मिलकर बनी थी जिसके डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सभापति (अध्यक्ष) थे। हालाँकि, भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 से पहले संविधान सभा बहुत ज्यादा सक्रिय नहीं थी और केवल अधिनियम के पारित होने के बाद ही यह ज्यादा सक्रिय हुई तथा इसने अपना अधिकतर कार्य सम्पन्न किया। जब एक बार एक संघीय संविधान तय हो गया था, फिर अध्ययन के लिए प्रमुख प्रारूप चुने गए थे। ये प्रारूप मुख्यतः दो श्रेणियों में आते थेः एक ओर अमेरिका का संविधान और दूसरी ओर कनाडा, आस्ट्रेलिया व भारत के लिए संघीय संविधान जो ब्रिटिश संसद द्वारा पारित संविधान अधिनियम द्वारा स्थापित था, जिनमें से ज्यादातर अमेरिकी अनुभवों पर आधारित थे।

संविधान के विभिन्न पहलुओं पर काम करने के लिए संविधान सभा द्वारा विभिन्न समितियों का निर्माण किया गया। इन समितियों की रिपोर्ट को संविधान सभा द्वारा स्वीकार किया गया और इसने डॉ. बी. आर. अम्बेडकर की अध्यक्षता में एक प्रारूप समिति का गठन किया जिसके प्रयासों ने 26 नवम्बर, 1949 को संविधान सभा द्वारा भारत के प्रारूपित (ड्राफ्टेड-Drafted) संविधान को अपनाने के लिए पराकाष्ठा पर पहुँचाया और 26 जनवरी, 1950 को यह अस्तित्व में आया।

स्रोत : इकाई 5 भारत का संविधान और एम डब्लू जी-010-बी 2 ई. पृ 65

बोध प्रश्न 1

1) भारत सरकार अधिनियम, 1935 की प्रमुख विशेषताएँ क्या थी?

.....

.....

.....

.....

2) स्वतंत्रता-पूर्व काल के तीन महत्वपूर्ण दस्तावेजों के नाम बताइये जिन्होंने संविधान के लिए ढांचा बनाने में मदद की थी।

.....

.....

.....

.....

5.3 भारतीय संविधान : आधारभूत लक्षण

2 नवम्बर, 1949 को, संविधान सभा द्वारा भारत के संविधान को स्वीकृत किया गया था। यह सबसे लम्बा संविधान है जिसमे मूलतः 395 अनुच्छेद थे जो 22 भागों और 9 अनुसूचियों में विभाजित थे। बहुल से विकासशील देशों के लिए यह संदर्भ (अनुसरण) के लिए एक आदर्श है।

5.3.1 मुख्य आदर्श

क) संप्रभुता

संविधान ने अपनी प्रस्तावना में घोषणा की है कि भारत के लोगों ने संविधान को अपनाया और अधिनियमित किया है और वे ही है जो गणतंत्र के संरक्षक है। भारतीय नागरिक ही असली बल है जिनमें शक्ति निहित है और भारतीय राज्य किसी भी विदेशी प्रभुत्व से मुक्त है।

ख) समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष

1976 में, संविधान के 42 वें संशोधन द्वारा 'समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष' शब्दों को संविधान की प्रस्तावना में शामिल किया गया था। पारम्परिक अर्थ में समाजवादी का मतलब था कि उत्पादन के साधनों पर राज्य का अधिकार होगा और राज्य सम्पत्ति के समान वितरण का प्रत्येक प्रयास करेगाा। भारतीय संदर्भ में समाजवाद का अर्थ था कि राज्य सबके लिये जीवन के न्यूनतम स्तर को सुनिश्चित करेगाा और गरीब व अमीर के मध्य अंतर को घटायेगा।

हालाँकि, 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द का उद्देश्य धर्म को राज्य से अलग करना है परन्तु भारतीय संदर्भ में राज्य सभी धर्मों का सम्मान करना है और यहाँ तक कि विभिन्न धर्मों के लिए बहुत से धार्मिक अवसरों पर उत्सव के अनुष्ठानों की सुविधा देता है, उदाहरण के तौर पर कुम्भ मेला, हज तैयारी आदि। भारतीय धर्मनिरपेक्षता का तात्पर्य अधार्मिकता नहीं है, इसका तात्पर्य सभी आस्थाओं और धर्मों के सम्मान से है। क्योंकि भारत व्यापक अंतरों के साथ एक बहुल-धार्मिक और बहुल-भाषाई देश है, स्वतंत्रता के दिन देश ने अपने आपको धर्मनिपेक्ष राष्ट्र घोषित कर दिया ताकि अपने सभी नागरिकों को समान अवसर दे सके जिससे वे बिना किसी संकोच या भय के अपने धर्म को पालन कर सकेगें। धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र की निम्न विशेषताएँ हो सकती है :

i) राज्य का अपना कोई धर्म नहीं होता ;

ii) राज्य किसी भी विश्वास (धर्म) के मानने वालों को अधिमानी सहयोग (श्रेष्ठता का बर्ताव) नहीं करता ;

iii) राज्य किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध उसके विश्वास (धर्म) के आधार पर भेदभाव नहीं करता;

iv) राज्य सभी विश्वासों/धर्मों के लोगों को सरकारी प्रतिष्ठानों में समान अवसर प्रदान करता है।

ग) सरकार का संसदीय स्वरूप

सरकार का संसदीय स्वरूप भारत के संविधान द्वारा केन्द्र और राज्य दोनों जगह स्थापित किया गया। इसका अर्थ है कि प्रधानमंत्री और उसका मंत्रीपरिषद् अपने सभी

कार्यों के लिए सरकार के प्रति जिम्मेदार होते है, खास तौर पर संसद के लोकसभा या निचले सदन के लिए जब वे लोगों के साथ अपना विश्वास (सदन/संसद में बहुमत) खो देते है तो उन्हें इस्तीफा दे देना चाहिए। अगर वे त्याग पत्र देने से इंकार कर दे, तो विपक्षी दलों द्वारा अविश्वास प्रस्ताव लाया जायेगा और सत्ता से सरकार को हटा देंगें।

5.3.2 मौलिक अधिकार और कर्त्तव्य

संविधान का भाग तीन भारत के सभी नागरिकों के लिए मौलिक अधिकारों का वादा करता है, मुख्यतः मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (Universal declaration of human rights) यूनिवर्सल डिक्लेशन ऑफ हयूमन राईट्स, 1948 और अमेरिका के संविधान में प्रतिष्ठापित (निहित) अधिकारों के अधिनियम से लिया गया है। मौलिक अधिकार राजनीतिक और नागरिक अधिकारों को सुनिश्चित करते है, जैसे कि मौलिक अधिकारों की अवधारणा को एक ऐसे समाज के लिए पेश किया गया था जो समतावादी (भेदभावहीन) थी। राज्य या समाज द्वारा किसी भी प्रकार के दबाव या प्रतिबंध से, सभी नागरिक समान रुप से स्वतंत्र होगें। स्वतंत्रता कुछ ही लोगों का विशेषाधिकार नही रह जायेगी। मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होने पर कोई भी सीधे उच्चतम न्यायालय जा सकता है। मौलक अधिकार निम्नलिखित है :

क) समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14.18)

अनुच्छेद 14 के अनुसार, राज्य अपने सभी नागरिकों के साथ 'कानून के समक्ष समानता' और 'कानूनों का समान संरक्षण' की नीति भारत की सीमा के अंदर लागू करेगाा। यह अमेरिकी और ब्रिटिश संविधानों से प्रभावित है, और इसका अर्थ है कि सभी नागरिकों को समान परिस्थितियों में एक जैसा व्यवहार (प्रबंध) प्रदान किया जायेगाा। **अनुच्छेद 15** के तहत कि राज्य जाति, धर्म, प्रजाति, लिंग या जन्म स्थान या इनमें से किसी भी आधार पर एक नागरिक के साथ भेदभाव नहीं करेगाा, परन्तु राज्य को कुछ परिस्थितियों में विशेष प्रावधान बनाने की अनुमति देता है।

अनुच्छेद 15 धारा (1) के अनुसार राज्य द्वारा किसी भी नागरिक की जाति धर्म, प्रजाति, लिंग, जन्म स्थान, था इनमें से किसी एक के कारण भेदभाव निषिद है।

अनुच्छेद 15 - धारा (2) दुकानो, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश या पूर्णतः या आंशिक राज्य निधि से पोषित या साधाारण,जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नानघाटों, सड़कों और सार्वजनिक समागमों के स्थानों के उपयोग के संबंध में राज्य और नागरिकों द्वारा भेदभाव करना प्रतिबंधित है। अनुच्छेद 15 - धारा (3), विशेष सुरक्षा की आवश्यकता की पहचान करके यह महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष सुरक्षा प्रदान करता है। अनुच्छेद 15 - धारा (4) के द्वारा नागरिकों के सामाजिक व शैक्षणिक रुप से पिछड़े वर्गों या अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण प्रदान करता है।

अनुच्छेद 16 सार्वजनिक रोजगाार में अवसर की समानता के अधिकार के बारे में बात करता है जो बताता है कि धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग, जन्म स्थान, मूलवंश या निवास के आधार पर न तो कोई नागरिक अपात्र होगा और न उससे भेदभाव किया जायेगा।

'मूलवंश और निवास' के अतिरिक्त आधार अनुच्छेद 15 में सम्मिलित नहीं है परन्तु अनुच्छेद 16 में जोड़े गए है। इसके अलावा, अनुच्छेद 16 - धारा (4) राज्य को पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में, जिसका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के लिए आरक्षण प्रदान करता है।

अनुच्छेद 17 अस्पृस्यता को समाप्त करने की घोषणा करता है और इसका प्रचलन किसी भी स्वरूप में प्रतिबंधित करता है। 1995 में, संसद द्वारा अस्पृस्यता अपराध अधिनियम लागू किया गया जिसका हाल ही में नाम बदल कर नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1995 कर दिया गया है। साथ में इसको मजबूत करने के लिए, सरकार ने अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम, 1989 और 1995 में अनुसूचित जाति वे अनुसूचित जनजाति 'अत्याचार निवारण नियम' को भी लागू किया।

ख) स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19.-22)

अनुच्छेद 19-22 के अन्तर्गत, स्वतंत्रता का एक मौलिक अधिकार के रुप में वर्णन किया है। सभी नागरिकों को भाषण (बोलने) और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, बिना शस्त्रों के शान्तिपूर्ण ढंग से एकत्र होने, संघीकरण या समिति निर्माण, स्वतंत्र संचालन (गतिविधि) और देश के अंदर कही भी बसने की स्वतंत्रता के अधिकार है। भारतीय संविधान में भाषण (बोलने) और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए प्रतिबंध के आधार है :

i) राज्य की सुरक्षा

ii) विदेशी राज्य के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध

iii) सार्वजनिक (लोक) व्यवस्था

iv) शालीनता और नैतिकता

v) न्यायालय की अवमानना

vi) निंदा

vii) उकसाने का अपराध, और

viii) भारत की संप्रभुता और अखण्डता

ग) शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23-24)

अनुच्छेद 23 बंधुआ मजदूरी, मानव तस्करी (यौन के लिए बच्चे और महिलाएँ), भीख माँगना, दासता आदि को प्रतिबंधित करता है। अनुच्छेद 24 के द्वारा, संविधान 14 साल से कम उम्र के बच्चों का कारखानों और जोखिम पूर्ण रोजगार में काम करने पर प्रतिबंध लगाता है। बच्चों को काम से प्रतिबंधित करने के लिए, सरकार ने बच्चों का रोजगार अधिनियम (एम्प्लॉयमेंट ऑफ चिल्ड्रन एक्ट), 1938, बाल श्रेय अधिनियम (चिल्ड्रन (Pledging of labour), 1933, खनन अधिनियम, 1952 और बाल श्रमिक विनियमन, अधिनियम, 1986 जैसे कुछ कानूनों को लागू किया।

घ) धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25-28)

हालाँकि संविधान में 'धर्म' राष्ट्र को परिभाषित नहीं किया गया है, परन्तु प्रस्तावना में इसने धर्मनिरपेक्षता को अपने एक उद्देश्य के रुप में वर्णित किया है। संविधान i) अन्तःकरण की स्वतंत्रता, ii) किसी धर्म को अपनाने, अभ्यास और प्रचार करने की स्वतंत्रता का वादा करता है। इस स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लोक व्यवस्था, नैतिकता (सदाचार) और स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए धार्मिक स्वतंत्रता है (अनुच्छेद 25)। धार्मिक और धर्मार्थ उद्देश्यों की पूर्ति हेतू संस्थाओं को स्थापित और कायम रखने के लिए धार्मिक समूहों और दूसरें भागों को निम्नलिखित अधिकार है :

i) धर्म के संबंध में अपने मामलों का प्रबंध स्वयं करना,

ii) चल-अचल संपत्तियों का मालिक होना और अधिग्रहण करना,

iii) ऐसी संपत्तियों का प्रबंध कानून के अनुसार करना।

राज्य से सहायता प्राप्त संस्थानों में धार्मिक निर्देश (शिक्षा) प्रतिबंधित है। धर्मनिरपेक्षता को कायम रखने के लिए, अनुच्छेद 27 कहता है 'किसी विशेष (निश्चित) धर्म या धार्मिक प्रभुत्व के प्रचार या रखरखाव के लिए किसी को भी कर देने के लिए बाध्य नहीं किया जायेगा'/यह राज्य के धर्मनिरपेक्ष चरित्र के गैर-पक्षपाती बने रहने को सुनिश्चित करने के लिए है।

ङ) सांस्कृतिक और शैक्षणिक अधिकार (अनुच्छेद 29-30)

अनुच्छेद 29 के अन्तर्गत राज्य को अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा की जिम्मेदारी सौंपी गई है। संविधान अल्पसंख्यकों को शैक्षणिक संस्थानों को स्थापित करने व उनका प्रबंधन करने का अधिकार भी प्रदान करता है और निम्नलिखित चार विशिष्ट अधिकार प्रदान करता है :

i) अनुच्छेद 29 (धारा 1) नागरिकों के किसी भी भाग को अपनी स्वयं की भाषा, लिपि या संस्कृति को संरक्षित करने का अधिकार

ii) अनुच्छेद 30 (धारा 1) धर्म और भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यकों को अपनी रूचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार

iii) अनुच्छेद 30 (धारा 2) एक शैक्षणिक संस्था के साथ राज्य सहायता प्राप्त करने के मामलें में इस आधार पर एक धर्म या भाषा पर आधारित अल्पसंख्यक द्वारा प्रबंधित है भेदभाव न करने का अधिकार

iv) अनुच्छेद 29 (धारा 2) राज्य द्वारा पोषित या राज्य-सहायता प्राप्त किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, प्रजाति या भाषा के आधार पर वंचित ना किया जाने का अधिकार है।

संविधान में 'अल्पसंख्यक' शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है परन्तु नागरिकों के एक वर्ग को संदर्भित करने के लिए व्यापक अर्थों में उपयोग किया जाता है, अल्पसंख्यकों का संरक्षण उनकी भाषा, लिपि और संस्कृति के संदर्भ में होगा।

च) संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32-35)

अधिकारों का उनके प्रवर्तन (अमल) के लिए शासन की कुशल प्रणाली के साथ होना आवश्यक है। अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत संविधान वादा करता है कि एक व्यक्ति को

अपने मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन (अमल) के लिए सीधे उच्चतम न्यायालय जाने का अधिकार है। अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत आपातकाल के अतिरिक्त जैसा कि संविधान में दिया गया है संवैधानिक उपचारों के अधिकार स्थगित नही होगें।

इन अधिकारों के प्रवर्तन (लागू होने) के लिए विभिन्न प्रकार की याचिकाये (Writ) उच्चतम न्यायालय द्वारा जारी की जा सकती है। निम्नलिखित याचिकाओं (Writ) के माध्यम से कोई भी निवारण प्राप्त कर सकता है :

i) बंदी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus) की याचिका (रिट) का अर्थ है "(हमारा आदेश है कि) आपके पास शरीर है"। यह केवल निजी व्यक्ति ही नहीं बल्कि अधिशासी (विशेष) के मनमाने कृत्यों के विरुद्ध सुरक्षा है। यह किसी भी (गिरफ्तार व्यक्ति, उसके रिश्तेदार, मित्र आदि समेत) के द्वारा दायर किया जा सकता है ओर यह व्यक्ति को न्यायालय में भौतिक/शारिरिक रुप से प्रस्तुत करने के लिए गिरफ्तार करने वाली प्राधिकारी को बाध्य करेगा।

ii) परमादेश (Mandamus) की याचिका का अर्थ है 'हमारा आदेश है'। यह उस व्यक्ति को आदेश देता है जिसे यह अर्द्व-सार्वजनिक या सार्वजनिक कानूनी कार्य करने के लिए संबोधित करता है जिसने उसे करने से मना कर दिया और जिसके कार्य को किसी दूसरे कानूनी उपचार द्वारा लागू नही किया जा सकता है।

iii) प्रतिषेध (Prohibition) की याचिका का अर्थ 'निषेध या मना करने के लिए'। इसके द्वारा उच्चतम न्यायलय या उच्च न्यायालय एक निचले अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण करने की मनाही है जिसके साथ यह कानूनी रुप से निहित नहीं है या एक मामले में कार्यवाही जारी रखने के लिए जो इसके अधिकार क्षेत्र से अधिक/बाहर है।

iv) उत्प्रेषणादेश (Certiorari) की याचिका का अर्थ है 'सूचित करने के लिए एक मामले का निचली अदालत करने के लिए जारी किया जा सकता है। इसका उद्देश्य उस आदेश/व्यवस्था को सुरक्षित करना है, जैसे कि एक निचली अदालत का अधिकार क्षेत्र उस अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण नहीं कर सकता जो इसके पास नहीं है।

v) अधिकार पृच्छा (Quo Warronte) की याचिका का अर्थ है 'किस वारंट द्वारा या किस आदेश द्वारा'। न्यायालय दावे की वैधता की जाँच करता है कि पार्टी/व्यक्ति किसी सार्वजनिक पद पर आसीन हो सकता है और यदि दावा नहीं मिला तो उसको पद से हटाया भी जा सकता है।

V) मौलिक कर्तव्य

1976 में अनुच्छेद 51-A में भाग iv-A के रुप में, मौलिक कर्तव्यों को संविधान के 42 वें संशोधन के द्वारा शामिल किया गया था। भारत मात्र एक ऐसा देश है जो संविधान में अधिकार और कर्तव्य साथ-साथ रखता है। अधिकार और कर्तव्य एक दूसरे से सहसम्बद्ध है। निम्नलिखित भारत के नागरिकों के लिए दस कर्तव्यों का घोषणापत्र (चार्टर) है :

i) संविधान का पालन करें और आदर्शों व संस्थाओं, राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करना।

ii) ऐसे आदर्शों को प्रोत्साहित व अनुसरण करें जिनमें स्वतंत्रता आंदोलन को प्रोत्साहन मिला था।

iii) भारत की संप्रभुता, एकता और अखण्डता को बनाए रखना और रक्षा करना।

iv) जब भी आवश्यकता पड़े तो देश की रक्षा करना और राष्ट्रीय सेवा प्रदान करना।

v) धार्मिक, भाषाई और क्षेत्रीय या अनुभागीय विविधताओं से पार पाने के लिए भारत के सभी लोगों के मध्य समरसता (मधुर संबंध) और सामान्य भाइचारें की भावना को बढ़ाना ; महिलाओं की गरिमा के लिए अपमानजनक व्यवहार को त्यागना।

vi) हमारी समग्र संस्कृति की समृद्ध विरासत को सम्मान देना और उसकी रक्षा करना।

vii) प्राकृतिक पर्यावरण जिसमें वन, झीले, नदियाँ और वन्य जगत के जीव जन्तु शामिल है, का संरक्षण और सुधार करना और जीवों पर अनुकम्पा करना।

viii) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानवतावाद, अनुसंधान (जाँच) की भावना और सुधार को विकसित करना।

ix) सार्वजनिक संपत्ति की रक्षा करना और हिंसा का प्रयोग न करना।

x) व्यक्तिगत और सामूहिक कार्यकलाप के हर क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य के लिए प्रयास करना ताकि देश प्रयत्न और उपलब्धि के उच्च स्तर तक लगातार विकास होता रहे।

xi) जो भी माता-पिता या अभिभावक है, 6 से 14 साल की आयु तक के बच्चों को द्वारा, जो भी हो उनके शिक्षा का अवसर प्रदान करना (86वें संविधान संसोधन, 2002 द्वारा जोड़ा गया)।

इन कर्तव्यों के प्रत्यक्ष प्रवर्तन के लिए संविधान में कोई प्रावधान नहीं है। उन्हें याचिकाओं (रिट) के द्वारा लागू नहीं किया जा सकता है, लेकिन केवल संवैधानिक तरीकों द्वारा ही प्रचार किया जा सकता है। उनके शामिल होने को इस आधार पर तर्कसंगत ठहराया गया है कि वे हमारे लोकतंत्र को मजबूत करने में सहायता प्रदान करेंगे। ये कर्तव्य सभी नागरिकों के लिए अनिवार्य है। केवल प्रबुद्ध जनमत और शिक्षा द्वारा राष्ट्र के लिए इन संवैधानिक कर्तव्यों की ओर गर्व और जिम्मेदारी की भावना को नागरिकों के मस्तिष्क में बैठाया जा सकता है।

सोचिये और करिये।

अपने अध्ययन केन्द्र पर दूसरे विद्यार्थियों के साथ, मौलिक अधिकारों व कर्तव्यों पर एक प्रस्तुति बनाएं और आप अपने पडोस में जानकारी को प्रदान करें, आम आदमी को उनके मौलिक अधिकारों और कर्तव्यों के बारे में जागरूक करें।

5.5.3 राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत

संविधान के भाग IV के अन्तर्गत, अनुच्छेद 36 से अनुच्छेद 51 तक राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों की व्याख्या की गई है, जिन्हें आयरलैंड के संविधान से अंगीकृत किया गया है। 'कल्याणकारी राज्य' की अवधारणा को मूर्त रूप देना इन नीति निर्देशक सिद्धांतों का उद्देश्य

है। मुख्यतः, ये राज्य और कानून निर्माण निकायों के लिए दिशा निर्देश या आदर्श है जो उन्हें नीतियों और कानूनों को बनाते समय ध्यान में रखने होते है। ये सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों से संबंधित है और अदालत में तर्कसंगत (न्यायोचित) नहीं है। ये प्रकृति में महत्वाकांक्षी है और सरकार के लिए सलाहकार की भूमिका निभाते है। उदाहरण के लिए :

i) अनुच्छेद 38 और 39 कहता है सभी वर्गों के लोगों के मध्य धन और भौतिक संसाधनों का समान वितरण हो ताकि कुछ हाथों में इसके केन्द्रीकरण को रोक सके।

ii) अनुच्छेद 43 कहता है सभी नागरिकों के लिए आजीविका के पर्याप्त साधनों का प्रावधान हो।

iii) अनुच्छेद 39 कहता है आदमी और औरत दोनों के लिए समान काम के लिए समान वेतन हो।

iv) अनुच्छेद 41 कहता है कार्य, शिक्षा और सार्वजनिक सहायता का अधिकार हो।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके है, मौलिक अधिकार (नागरिक और राजनीतिक अधिकार) न्यायोचित (न्यायालय में दावा किया जा सकता है) है जबकि नीति-निर्देशक सिद्धांत (सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक अधिकार) गैर-न्यायोचित (न्यायालय में दावा नहीं किया जा सकता है) है और प्रकृति में अधिकारों से अधिक महत्वाकांक्षी है। यह संविधान सभा के अंदर विवाद का कारण बन गया था। बी. एन. राव, ए. के अय्यर, बी. आर. अम्बेडकर, के. एम. मुंशी और के. टी. शाह जिन्होंने एक उदार समाजवादी दृष्टिकोण को साझा किया था नीति-निर्देशक सिद्धांतों को न्यायोचित बनाने के पक्ष में थे (ऑस्टिन, 2001. पृ.77)। प्रचलित सामाजिक और आर्थिक संरचनाओं के अंदर, उन्होंने महसूस किया कि भारतीय जनसंख्या का एक बडा भाग गरीब और अशिक्षित था और जनसंख्या का यह कमजोर तबका (भाग) मौलिक अधिकारों तक पहुँचने की स्थिति में नही हो सकता है यदि भूमि सुधार, सम्पत्ति के पुनर्वितरण और निरक्षरता उन्मूलन जैसे मुख्य मामलों को पहले संबोधित (सुलझाया) नहीं किया जाता। इसलिए उनके लिए एक समतावादी, राजनैतिक संवैधानिक लोकतंत्र को सुनिश्चित करने और एक नयी समतावादी सामाजिक व्यवस्था में प्रवेश करने के लिए सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक अधिकारों के मुद्दे कहीं अधिक आवश्यक थे।

हालाँकि, भाग IV को न्यायोचित बनाने के सुझाव को बडी समिति द्वारा खारिज कर दिया गया था। परन्तु, कुछ मामलों में न्यायपालिका के हस्तक्षेप द्वारा और राज्य के कुछ नीति-निर्देशक सिद्धांतों को जीवन के अधिकार और स्वतंत्रता की अवधारणा के विस्तार के द्वारा मौलिक अधिकारों के क्षेत्र में शामिल किया गया है। संविधान का अनुच्छेद 21 न्यूनतम आय से लेकर जीवन के अधिकार आदि मामलों से संबंधित मुद्दों तक विस्तारित है।

5.3.4 संघीयता, व्यस्क मताधिकार, न्यायपालिका एवं सकारात्मक विभेद की नीति

i) भारतीय राज्य प्रकृति में संघीय है, इस संदर्भ में कि सत्ता संघ (केन्द्र) और राज्यों के मध्य विभाजित है। बाहरी खतरे से उत्पन्न होने वाले आपातकाल के समय केन्द्र सरकार एकात्मक चरित्र ग्रहण कर सकती है और केन्द्रीय संघ सरकार सभी राज्यों के लिए कानून बनाने के लिए सशक्त (सक्षम) है।

ii) **वयस्क मताधिकार**

इसका तात्पर्य है 18 वर्ष की आयु से ऊपर के सभी वयस्क नागरिकों को जाति, वर्ग, क्षेत्र, धर्म, लिंग या प्रजाति पर आधारित भेदभाव के बिना मतदान (वोट) का अधिकार मिला है। यह समानता का आधारभूत सिद्धांत है जिस पर लोकतंत्र टिका हुआ है।

iii) **स्वतंत्र न्यायपालिका**

विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका तीन मुख्य संस्थाएँ है जिसके द्वारा राज्य कार्य करता है। शक्तियों के विभाजन के नियमों के अनुसार, भारतीय न्यायपालिका स्वतंत्र है। न्यायपालिका की यह स्वतंत्रता राष्ट्रपति द्वारा सीधी नियुक्ति के माध्यम से सुनिश्चित है और जजों को केवल कार्यपालिका द्वारा नहीं हटाया जा सकता है।

न्यायिक समीक्षा

अमेरिका के संविधान से, भारत ने यह अनुगृहीत किया कि न्यायपालिका केन्द्र या राज्य सरकार (विधायिका/कार्यपालिका) द्वारा पारित एक कानून को असंवैधानिक या अशक्त और शून्य (असक्षम) घोषित कर सकती है यदि यह भारत के लोगों को मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत दिये गये अधिकारों का उल्लंघन करता है।

कठोर और लचीला दस्तावेज

भारत का एक लिखित संविधान है और इसने अमेरिका के संविधान से बहुत सी विशेषताएँ ग्रहण की है परन्तु यह इतना कठोर नही है जितना अमेरिकी संविधान है। संशोधन के लिए प्रक्रियाओं के रूप में इसमें लचीलापन शामिल है। वहाँ पर वे विधियाँ है जिनकी मध्यस्थता से संवैधानिक कानूनों को परिवर्तित या संशोधित किया जा सकता है। सीधे शब्दों में, कानूनों में परिवर्तन और संशोधन की प्रक्रिया स्पष्ट और साधारण रूप से समझायी गयी है और यह कठिन नहीं है।

iv) **सकारात्मक भेदभाव**

संविधान का XVI भाग अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण से संबंधित है। जनसंख्या के दलित, वंचित और हाशिए के संबंधित लोगों को विशेष विशेषाधिकार देने की नीति को सकारात्मक कार्यवाही कार्यक्रमों के रुप में भी जाना जाता है। इस नीति का अनुसरण अमेरिका द्वारा नस्लीय भेदभाव पीड़ितों के लिए किया जाता है। भारत में, दलितों और आदिवासियों को उनके उत्थान और मुख्य आबादी का हिस्सा बनाने के लिए विभिन्न श्रेणियों में आरक्षण के लिए विशेष दर्जा दिया गया है। कुछ संवैधानिक प्रावधान जिनका उद्देश्य सकारात्मक भेदभाव है :

अनुच्छेद 17 : 'अस्पृश्यता' का उन्मूलन और किसी भी रूप में इसके अभ्यास को एक दण्डनीय अपराध बनाना।

अनुच्छेद 46 : शैक्षणिक और आर्थिक हितों को प्रोत्साहित करना।

अनुच्छेद 16 और 335 : सरकारी (सार्वजनिक) सेवाओं में रोजगार के मामले में अधिमानी व्यवहार

अनुच्छेद 330 और 332 : लोक सभा और विधान सभाओं में सीटों का आरक्षण और बाद में, 1992 में अन्य पिछड़े वर्गों (OBC) और पंचायतों में महिलाओं (1996) के लिए आरक्षण को सम्मिलित किया गया।

स्त्रोत इग्नू : इकाई 5 भारत का संविधान, एग्नेस फ्लाविया संवैधानिक बहस, इकाई 1 भारतीय संविधान और इकाई 2 संवैधानिक दायित्व

बोध प्रश्न 2

1) संविधान में समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता शब्द कब जोडे गए थे?

.....

.....

.....

.....

.....

2) दो मौलिक अधिकारों और कर्तव्यों को बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

5.4 सारांश

इस इकाई में, हमने भारत में लोकतंत्र के संवैधानिक आधार के मूलभूत ढाँचे को देखा। उस कार्यविधि (व्यवस्था) को देखा जिसके द्वारा विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका राज्य की संस्थाओं को चलाने के लिए कार्य करती है। भारत ने अपना संविधान 1950 में अपनाया और हम भारतीय गणतंत्र के 70 सालों का उत्सव मना रहे है। हमने इसके निर्माण की प्रक्रिया को विस्तार में देखा। आधारभूत आदर्श, विशेषताएँ और लक्ष्य जैसा कि संविधान में परिभाषित है की भी इस इकाई में व्याख्या की गई है। संविधान सिर्फ राज्य पर निर्भर अपने नागरिकों को मौलिक अधिकार ही नहीं देता है बल्कि यह सुनिश्चित भी करता है कि उनके अधिकारों का उल्लंघन नहीं हो रहा है और साथ ही साथ राष्ट्र राज्य के प्रति उसके नागरिक अपने मौलिक कर्तव्यों का पालन भी कर रहे है।

समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र, आरक्षण, स्वतंत्र न्यायपालिका जैसी विभिन्न विशेषताओं के द्वारा हम उस बुद्धिमत्तता को देखने में सक्षम हैं जिसके साथ हमारे संविधान का निर्माण किया गया है। यह एक ऐसा दस्तावेज है जिसने, स्पष्ट रुप से निर्धारित दिशा-निर्देशों के माध्यम से, राज्य की विभिन्न संस्थाओं, यानि विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका, के मध्य एक संतुलन बनाता है।

5.5 संदर्भ

Austin, G. (2001) The Indian Constitution Cornerstone of a Nation, New Delhi: Oxford University Press.

http://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/9908/1/Unit%205.pdf accessed on 20th Jan 2019

Agnes Flavia The Constitutional Debates

http://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/5611/1/MWG-010-B2-U4.pdf accessed on 20th Jan 2019

Unit 1 Indian Constitution

http://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/17193/1/Unit-1.pdf accessed on 26th Jan 2019

Unit 2 Constitutional Obligations

http://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/7912/1/Unit-2.pdf accessed on 24th Jan 2019

5.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) मुख्य विशेषताएँ थी : (अ) अखिल भारतीय महासंघ ; (ब) प्रांतीय स्वायत्तता ; (स) केन्द्र में दोहरा शासन (द्विशासन) प्रबंध ; और (द) संघीय न्यायालय।

2) स्वतंत्रता-पूर्व काल के तीन महत्वपूर्ण दस्तावेज जिन्होंने संविधान के लिए ढाँचा प्रदान किया, वे थे :
   - नेहरू प्रतिवेदन (रिपोर्ट), 1928
   - कराची प्रस्ताव, 1931
   - सप्रु प्रतिवेदन (रिपोर्ट), 1945

बोध प्रश्न 2

1) 1976 में, 42 वें संविधान संशोधन के द्वारा संविधान की प्रस्तावना में 'समाजवाद और धर्मनिरपेक्ष' शब्दों को शामिल किया गया था।

2) मौलिक अधिकार :समानता का अधिकार और स्वतंत्रता का अधिकार

   मौलिका कर्तव्य : भारत की संप्रभुता, एकता और अखण्डता को बनाए रखना और रक्षा करना और हमारी समग्र संस्कृति की समृद्ध विरासत को सम्मान देना और उसकी रक्षा करना।

शब्दावली

प्रस्तावना : संविधान का वह भाग जो भारत के लोगों के आदर्शों और विचारों को परिभाषित करता है।

संप्रभुता : लोग विदेशी शासन से मुक्त हैं तथा लोगों ने संविधान को अपनाया और अधिनियमित किया है तथा वे गणतंत्र के संरक्षक है।

समाजवादी : उत्पादन के साधनों पर राज्य का स्वामित्व होगा।

धर्मनिरपेक्ष : इसका उद्देश्य धर्म को राज्य से अलग करना है।

राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत : राज्य और कानून निर्माण निकायों के लिए दिशा-निर्देशक या आदर्श जो नीतियों और कानूनों को बनाते समय ध्यान में रखते है।

संघीयता : शक्ति संघ (केन्द्र) और राज्यों के मध्य विभाजित है।

सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार : इसका तात्पर्य है 18 वर्ष की आयु से ऊपर के सभी व्यस्क नागरिकों को जाति, वर्ग, क्षेत्र, धर्म, लिंग या प्रजाति पर आधारित भेदभाव के बिना मतदान (वोट) का अधिकार मिला है।

सकारात्मक भेदभाव : जनसंख्या के दलित, वंचित और हाशिए के भागों (वर्गों) को विशेष विशेषाधिकार देने की नीति।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

Austin, G. (2001) The Indian Constitution Cornerstone of a Nation, New Delhi: Oxford University Press.

Unit 5 The Constitution of India

http://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/9908/1/Unit%205.pdf accessed on 20th Jan 2019

Agnes Flavia The Constitutional Debates

http://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/5611/1/MWG-010-B2-U4.pdf accessed on 20th Jan 2019

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY